नीतिनिबन्ध।

आज़मगढ़निवासी

श्रीयुक्त पं॰ अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत।

पटना—"खड्गविलास" प्रेस बांकीपुर.

साहबप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित.

१८८६

प्रथम बार] [दाम ॥)

नीतिनिबंध।

अध्ययन और तप।

प्राचीन समय से सहस्त्रों मतिमानों ने विद्या की प्रशंसा की है और अधिक समय इस के अध्ययन करने में व्यय किया है और जो जो फल पुराचीन काल में अथवा इस समय में विद्याध्ययन में उद्योग करने से प्राप्त हुये हैं सकल सहृदयों पर भली भांति प्रगट हैं। एक से एक बढ़ कर विद्वान और मतिमान, भारत, यूनान, चीन इत्यादि में हो गये हैं। जिन्हों ने क्या कुछ नहीं किया। इस में कोई सन्देह नहीं कि कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जो विद्या की पदवी सर्वोत्कृष्ट न रक्खे। विद्या से हमारा यही अभिप्राय नहीं कि किसी भाषा के बहुत से शब्द स्मरण हो जांय अथवा किसी विद्या की हम कथित पुस्तक निर्माण कर लें। बरन विद्या से अभिप्राय वह योग्यता है जिस से मनुष्य किसी वस्तु का भेद जानने पर समर्थवान हो। इसी प्रकार बहुधा लोगों ने तप की पदवी भी बड़ी निश्चित की है और प्रत्येक समय में सहस्त्रों साधु, महात्मा, और तपस्वी हुये हैं। जिन का नाम पृथ्वी पर आज तक प्रगट है बरन सर्वदा स्थिर रहेगा। सहस्त्रों ईश्वरीयमार्गदर्शक सज्जन ऐसे हुये हैं जिन्हों ने सर्वथा यही शिक्षा की है कि सब काम छोड़ कर राम का नाम लो अथवा गोबिन्द का स्मरण करो। सम्पूर्ण बातें संसार की केवल छल की हैं मनुष्य को समुचित है कि सब से निवृत्त हो कर अपने उत्पादक का भजन करे।

यह दोनों बातें ऐसी हैं कि मनुष्य का चित्त अवश्य कहेगा कि प्रत्येक मनुष्य का इन दोनों का प्राप्त करना प्रथम कर्तव्य है। पर प्रायः लोग इन दोनों के विषय में बिचार करने में बड़ी२ भूल कर जाते हैं। और बेढंग इस में उलझ कर उद्विग्न हो बैठते हैं।

यह कौन कह सकता है कि तप नहीं करना चाहिये, क्योंकि कोई मनुष्य नहीं होगा जिस के हृदय में यह विचार वास्तव में न उत्पन्न हो कि निस्सन्देह हमारा निर्माता कश्चित बलवान शक्तिमान है और उस का उपकार हमारे ऊपर सदा रहता है और उस का धन्यबाद हम को सदैव समुचित है। यही एक विचार ऐसा है जो सदा मनुष्य के साथ लगा रहा है और जिस पर ध्यान देने से संसार भर को मतिमानता, दर्शन, और विज्ञान अथच पदार्थविद्या उस ने निकाली है। जैसे प्राचीन समय से यह अनुमान चला आता है कि कश्चित युक्ति ऐसी अवश्य है कि जिस से ताम्र स्वर्ण हो सकता है और इसी उद्योग के पीछे पड़कर लोगों ने सहस्रों प्रकार की परीक्षायें कीं जिन के फलों का समूह वह विद्या निर्धारण की गई जो आज रसायन विद्या के नाम से प्रख्यात है। उसी भांति यह ध्यान भी लोगों को सदा से बंधतारहा है कि कोई विश्वरचयिता अवश्य है जिस की जाति और असीम गुणों का पता लगाना किञ्चिदपि मनुष्य से संभव है और इसी आशय पर विचार और इसी सूत्र से आन्दोलन कर के विद्वानों ने ग्रन्थ के ग्रन्थ और कालम के कालम काले किये पर:—

नहिं वह औषधि ही मिली, ताम्र स्वर्ण जेहि होय।
नहिं सूझी वह युक्ति ही, जेहि हरि निरखै कोय॥

निदान यह ज्ञात होता है कि ईश्वर की तपस्या की ओर मनुष्य के चित्त की स्वाभाविकप्रवृत्ति और नैसर्गिक अनुराग है। परंतु यह भी विचारणीयविषय है कि यह बात योग्य हो सकती है अथवा नहीं कि अध्ययन को त्याग कर के केवल तप के लिये परिकरबद्ध अथवा दत्तचित्त हों! तपस्या से जहां तक मेरी अल्पमति निर्धारण करती है, ईश्वर को कश्चित स्वाभाविक अथवा निज का लाभ नहीं है और न वह ऐसा स्वामी है कि उस को सर्वप्रिय होने की आकांक्षा हो। यह तपस्या इस के अतिरिक्त और क्या होसकती है कि मानों इस द्वारा हम परमेश्वर प्रदत्त बस्तुओं का धन्यबाद करते हैं और उस के उपकार का परि-

चय देतेहैं। और धन्यवाद से उपकारक को कोई लाभ नहीं होता वरन जो उपकारपात्र होता है उस के चित्त का समाधानहो होता है और वह समझता है कि हमने इस उपकार का प्रतिकार कर दिया कि अब उस के बोझ से कुछ हलके हों। इस में कोई सन्देह नहीं कि हम पर यदि कोई उपकार करे तो जब हम उस को धन्यवाद प्रदान करेंगे तो वह अवश्य प्रसन्न और हम पर दयालु होगा। पर उस का यह प्रसन्न होना उस आशा के कारण है जो वह हम से भी किसी ओखे समय में रख सकता है। चाहे सदैव यह बात न हो कि हम उस का प्रतिकार कर सकें, क्योंकि संसार का व्यवहार यही है कि हम जिस के कामआवेंगे वह हमारे काम आवेगा। ईश्वर की जातिपर भी लोगों को ऐसाही अनुमान हुआ होगा और जो कि परमेश्वरीय प्रदत्त पदार्थ अनावधि हैं अतएव उस का धन्यवाद भी अपरमित ठहरा। अतएव हम तप में यह उत्तमता देखते हैं कि जब मनुष्य उसे एक परमित सीमा तक सम्पन्न कर लेगा तो वह समझेगा कि हमने उस कुछ को सुसम्पन्न किया जो हमारा कर्तव्य था। पर कठिनता से कश्चित व्यक्ति ऐसा हस्तगत होगा जिस को इतना ज्ञान हो क्योंकि मनुष्य के चित्त की गति यह है कि वह प्रत्येक विषय का कारण और अभिप्राय जानने के लिये उद्योग किया चाहती है। मैं जो समझताहूं तदनुसार यह ज्ञात होता है कि कोई कितनी ही तपस्या क्यों न करे पर वह कभी सावधान न होगा और यह तर्कनायें उस के हृदय में कुछ न कुछ अवश्य होती रहेंगी कि, क्या मैंने वह जान लिया जिस का जानना मनुष्य का कर्तव्य है? क्या मैंने उस कर्तव्य को पूरा किया जिस के लिये मैं संसार में उत्पन्न किया गया? जब ऐसी तर्कनायें हृदय में उत्थित हुईं तो फिर बुद्धि के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं सहायक होसकता अतएव जिसने बुद्धि को उन्नति नहीं की और विचार के मार्ग में कभी पद नहीं रखा, ऐसे समय वह व्यस्त और व्यथित होता है और कोई युक्ति नहीं सूझती कि उस कठिन प्रश्न का समाधान करे अथवा उस शंका की निवृति करे॥

थोड़ी बहुत बुद्धि किस की नहीं होती पर इस ठौर पर वह बुद्धि अपेक्षित है जो बिना विद्योपार्जन किये नहीं उपलब्ध होसकती। संसार में मानव के सम्मुख सहस्रों वस्तुयें हैं और विवेचक अथवा विचारशील के लिये एक परमाणु में संसार की सम्पूर्ण बातें भरी हैं। प्रत्येक का ज्ञान कर लेना सुगम नहीं और प्रयोजनीय अथवा आवश्यक विषयों की राशि में से मनोनीत कर लेना अतिकठिन है। कल्पना भी करें कि जब हम को आवश्यकता अथवा खोज होगी, हम स्वत: परीक्षा कर के प्राप्तकरेंगे इस में सन्देह नहीं कि परीक्षा द्वारा सुमति अवगत होती है, परंतु यदि हम अपनीही परीक्षा से प्रारंभ करें तो जो हमारी कामना है उस का सहस्रांश भी न प्राप्त होगा। हमारा वय: क्रम इतना नहीं है कि उस में पूर्ण बुद्धि प्राप्त होने के योग्य परीक्षायें की जा सकें। अतएव ऐसी दशा में अवश्य है कि हम भूतपूर्व मतिमानों की परीक्षाओं को अपना ज्ञात करें और उस में निज परीक्षाओं को भी अधिवाता करें।

सारी अवस्था मनुष्य यदि केवल तप करने में व्यतीत कर दे तथापि यह बात ध्यान में नहीं आसकती कि बिना बुद्धि से कार्य लिये अथवा मस्तिष्क की उन्नति किये वह कश्चित ऐसा पूर्ण फल प्राप्त कर सकेगा जिस से उस को भली भांति चित्त स्थिरता होगी। हम सोचते हैं कि यदि कश्चित व्यक्ति पंचाशतवर्ष पर्यंत वनस्थ होकर सब प्रकार का दुख उठावे, अहर्निशि भगवत नामोच्चारण किया करे, खाना पीना अपने ऊपर हराम समझे, परंतु जब तक उस की मस्तिष्क ने वह शक्ति नहीं प्राप्त की है जिस से वह नवीन विषयों के जानने का उद्योग कर सके वह कदापि कश्चित लाभ को प्राप्त नहीं कर सकता, यह बातें प्रगट में ऐसी हैं कि पाठकगण यही सोचेंगे कि इस आशय के लेखक का विश्वास बौद्धमतवालों सा है, परंतु ऐसा कदापि नहीं, हमारा अभिप्राय न तो किसी मत में तर्क वितर्क करने का है, और न गौतमीय वाक्यों की पूरी पुष्टता करने का। यद्यपि कि उस श्रेष्ठ मनुष्य का कथन ऐसा नहीं कि जिस से मनुष्य के स्वभाव में अंतर आवे अथवा उस में कश्चित अवगुण हो। हमारा अभिप्राय केवल यह है कि उस सर्वहितैषी

जगदीश की इच्छा मनुष्य के उत्पादन करने से यही न रही होगी कि सम्पूर्ण आयु तपस्या करने ही में व्यय कर दें और उसी का आजन्म स्मरण और नामोच्चारण किया करे। बरन उस की कामना मुख्यतः यही ज्ञात होती है और विशेष कर्तव्य भी यही हो सकता है कि हम पूर्ण बुद्धि प्राप्त करें और विद्योपार्जन में उद्योग करने से निज मस्तिष्क को उन्नतिशाली बनावें।

मैंने प्रथम वर्णन किया है कि तपस्या करना एक प्रकार का ईश्वरीय प्रदत्त उत्तम वस्तुओं का धन्यवाद देना है, और उस को अपना हितैषी और उपकारक मानना है। परंतु क्या उपकारक इस बात को स्वीकृत करेगा अथवा उत्तम समझेगा कि हम उन उत्तम वस्तुओं का जिन को उस ने हम को दी हैं सम्मान न करें और उन को उचित रीति से कार्य में परिणत न करें। ऐसा न करने से निस्सन्देह उपकारक का क्रोधानल हम पर प्रज्वलित होगा। मुझे एक उदाहरण इस समय अतीवोत्तम स्मरण हुआ है जिस को मैं यथावत लिखता हूं किसी नराधिप ने निज मंत्री को प्रसन्न हो कर एक उत्तम दुकूल प्रदान किया, मंत्री ने प्रणाम करणोपरांत उस को धारण कर लिया। कियतकालोपरांत मंत्री ने राजसभा से बाहर हो कर गृहयात्रा की, मार्ग में कहीं उस की नाक बह चली उस ने तत्काल उसी दुकूल से स्वनासिका पोंछ दियी। इस सम्पूर्ण व्यवस्था को कथित पिशुन मनुष्य ने राजा के कर्णगोचर किया, उस ने क्रुद्ध हो कर मंत्री से दुकूलाहरण किया और बड़ी अप्रतिष्ठा के साथ दंड दिया।

यही दशा मनुष्य की ईश्वर के सम्मुख समझनी चाहिये, परमेश्वर ने सुमति मनुष्य को प्रदान की और इसी से उस को सृष्टि के अपर जीवों से उत्कृष्टता है। अतएव यह बात कथमपि यथार्थ नहीं हो सकती कि हम उन बातों से बिमुख रहें जो बुद्धिद्वारा हस्तगत हो सकती हैं। और यदि कोई यह कहे कि बुद्धि का सर्वोत्कृष्ट और प्रशंसनीय यही कार्य है कि वह जीवसम्बंधी भेदों को ज्ञात करे, तो इस को अस्वीकार करना नहीं हो सकता। परंतु जीव सम्बन्धी बातें ऐसी नहीं कि अकस्मात

जानी जा सकें। वरन मनुष्य को प्रथम चाहिये कि सांसारिक भेदों का भेद भली भांति समझ ले। जो मनुष्य धरातल पर भली प्रकार नहीं चल सकता वह पर्वतों की श्रेणियों पर क्या चढ़ेगा। दूसरे यह बात भी चिंतनीय है कि मनुष्य सम्पूर्ण आकाशीय अथवा जीव सम्बन्धी कठिनाइयां, सांसारिक वस्तुओं अथवा उन्हीं बातों से पटतर देने से जान सकता है जिन को वह देखता है अथवा जानता है पृथ्वी ही की घटनाओं के समान और तादृश आकाशीयकर्मों को अनुमान करता है। अतएव अवश्य हुआ कि आकाशीय और जीवसम्बन्धी कठिनाइयों को सुगम करने के लिये पहले सांसारिक घटनाओं और विषयों में पूर्ण अभिज्ञता उत्पन्न करे और यह अभिज्ञता बिना भली प्रकार विद्याध्ययन किये नहीं हस्तगत हो सकती।

बुद्धि इस बात को अवश्य कहेगी कि जो विद्वान प्रत्येक विषय को भली भांति समझ बूझ कर करता है, किसी की बुराई की कामना नहीं करता, दश मनुष्यों का उस के द्वारा उपकार होता है, वह कभी उत्तमोत्तम तपस्वी से न्यून पदवी नहीं रखता और न ईश्वर उस से अप्रसन्न हो सकता है। और यह भी ज्ञात होता है कि वह मनुष्य का करणीय कर्म कर रहा है, मनुष्यतन का उचित कर्तव्य सम्पादन कर रहा है, ईश्वर उस से प्रसन्न और सृष्टि उस से संतुष्ट है। और इस में कोई संदेह नहीं कि जिस को पूरी बुद्धि और समझ प्राप्त है, कथित सकल भलाइयां उस में एकत्र रहती हैं।

यद्यपि यह बात सत्य है कि सांसारिककर्म ऐसे हैं कि उन में पड़ने से मनुष्य को दुःख सहन करने के अतिरिक्त अपर कथित सदयुक्ति नहीं है और जितना ही कोई उन में पड़ता जाय उतनी हीं अधिक आपत्तियां और कठिनाइयां समक्ष होती हैं परंतु जिस को सांसारिक बातें सताती रहती हैं और जो उन में पड़ कर सदा आपदाओं को सहन करता है मतिमान नहीं कहा जासकता। सांसारिक आपत्तियां यदि ऐसे चोरों के समान समझी जायं जो निशा काल में हम को लूटते हैं तो तपी

ऐसे मनुष्य के समान है जो उन के भय से अपनी वस्तुओं को छिपा कर आप भी कहीं जा छिपता है परन्तु विद्वान यह उद्योग करता है कि निज विद्या के प्रभाव से वह रात हो न होने दे जिस में चोरी का भय है। सांसारिक स्नेह अथवा प्रीति यदि ऐसे बाढ़ के समान है जो हमारी अचेतावस्था में हम को बहा ले जाती है तो तपस्वी वह मनुष्य है जो अपनी चटाई और तूंबा लेकर पलायित होता है। किन्तु विद्वान उस वीर पुरुष का काम करता है जो डूबते हुये लोगों को भी बचाता है।

आहार कितना करना समुचित है।

इस बात का जानना अवश्य है कि मनुष्य कितना आहार करे जिस से उस का शरीर पुष्ट होवे और उस का स्वास्थ्य भंग न हो।

इटली के एक मनुष्य का उपाख्यान प्रख्यात है कि उस ने असंयम से त्रिंशत वर्ष की अवस्था में अपने को बिगाड़ दिया, किन्तु पांच छटांक वनस्पतीय आहार के प्रतिदिन व्यवहृत करने से फिर वह शत वर्ष पर्यंत जीवित रहा और उस के अवयव (कुवाय) ऐसे हो गये कि कदाचित विंशति वर्ष की अवस्था में ऐसे न रहे होंगे। इसी प्रकार एक फ्रांसीसी की अवस्था भी सात छटांक प्रतिदिन इस आहार के व्यवहृत करने से दीर्घ हुई। रूस का महाराजाधिराज सात सेर मांस प्रतिदिन खाता था और एक अपर व्यक्ति इतना ही एक बार में खा जाता था, निदान खाने का परिमाण प्रत्येक व्यक्ति का समान नहीं है अतएव खाने का परिमाण नियत करनेवाली हमारी कामना है, जो स्वास्थ्य की अवस्था में पाई जाती है।

जब कि तालुव मूल में किसी खाद्य वस्तु का प्रथम स्वाद न पाया जाता हो, और आहार की कामना भी अवशिष्ट न रही हो; तब भोजन करने से हस्ताकर्षण कर लो, तो ज्ञात हो गया कि तुम पूर्णोदर खा चुके, जिस व्यक्ति को भली प्रकार भूख न हो उचित है कि कदापि खाने की ओर प्रवृत्त न हो, एक डाक्तर महाशय अमेरिका में लोगों को

पाकालय में भोजन करते निरीक्षण कर एक नीतिज्ञ के विषय में लिखते हैं, कि वह साढ़े तीन मिनट में दो अंडे, दो बड़े आलू, कुछ मांस दूध चाय के लघु कटोरे, कुछ रोटी एक खाने की छोटी थाली यह सब चख गया, और अजीर्ण का क्रोध अपने एक मित्र से वर्णन करने लगा। किंतु नीतिज्ञता की ऐसे व्यक्ति से आशा हो सकती है, पशु भी इस से उत्तम रीति जानते हैं। जब पत्र ले जानेवाला कपोत दूर से उड्डीयमान हो कर आता है, वह उस समय आहार पर नहीं गिरता, पहले वह थोड़ा सा जलपान कर लेता और तब तनिक विश्राम करता है, उपरांत इस के दाना चुगता है, पशु सम्बन्धी बुद्धि शिक्षा देती है।

गृह।

जो व्यक्ति अपने स्वास्थ्य का कुछ ध्यान रखता है और अपने जीवन को कुछ भी प्यार करता है उसे समुचित है कि अपने निवास का स्थान ऐसा बनावे कि उस के कारण स्वास्थ्य में अंतर न उपस्थित हो, और गृह की बुरी बनावट और बुरे स्थान के कारण नाना प्रकार के रोग न लगजावें। भारत में विशेषत: लोगों को यह ध्यान रखना चाहिये कि कैसी पृथ्वी पर भवन बनाते हैं कैसे स्थल पर घर उठाते हैं, और किस ढंग पर उस को निर्माण कराते हैं, इन तीन बातों में से यदि किसी में त्रुटि हुई तो यही समझना चाहिये कि अपने जीवन के लिये सदा के दुख का द्वार खोल दिया, और अपने को मूर्खता का अनुचर बना लिया इस में संशय नहीं कि पृथ्वी में बहुत से ठोस द्रव्य हैं किन्तु इन के व्यतीत पृथ्वी के भीतर भिन्न प्रकार की वायु और द्रव वस्तुयें भी हैं। छिद्रवान पृथ्वी में सर्वदा का कार्बोनिक एसिड गास प्रस्तुत रहता है और प्रत्येक प्रकार के गास पृथ्वी के भीतर जा सकते हैं। घर के भीतर की वायु उष्ण रहती है, इस लिये आर्द्र पृथ्वी के बुरे गास प्राय: भीतर से निकल कर स्वच्छ वायु का स्थान ग्रहण कर लेते हैं और गृहनिवासियों को भांति भांति के रोगों में डालदेते हैं। यह तो सब को ज्ञात है कि विषमय वायु से कितने रोग संसार में उत्पन्न होते हैं और दूर २ के मलिन नलों से भी प्राय: महामारी सम्बन्धी रोग अधिकता से फैल जाते हैं।

कई प्रकार के तप अस्वच्छ वायु के कारण मनुष्य को सताते हैं। यह भी प्रगट है कि पृथ्वी के अधोभाग में जल है कहीं कम गहराई तक कहीं अधिक गहराई तक। यदि पृथ्वी के तल से थोड़ाही नीचे जल रहे तो वह स्थान नैरुज्य के निमित्त कभी श्रेयस्कर न रहेगा, ऐसे स्थान के भवन के निवासियों को प्राय: फेफड़े का रुज जैसे (तपेदिक) होता है। जहां की पृथ्वी पहले नीची रही हो किन्तु कूड़ा इत्यादि से कुछ दिनों में पटगयी हो तो वह भी निकृष्ट होती है। बड़े बड़े नगरों के प्राय: भाग ऐसीही पृथ्वी पर बसे हैं। इस पृथ्वी के भीतर प्रत्येक प्रकार की मलीन वस्तुयें पड़ी हैं और यत: ऐसी पृथ्वी कुछ आर्द्र रहती है और बहुत कठोर नहीं होती इसलिये अस्वच्छ वायु इस के भीतर से आया करती है। और गृह की वायु को नष्ट कर देती है। यह बात सदा ध्यान रखना चाहिये कि ऐसी पृथ्वी पर भवन न बनाया जावे यदि बनावें भी तो यह ध्यान रखना चाहिये कि पृथ्वी अल्प काल की पटी न हो। समय व्यतीत हो जाने से ऐसी पृथ्वी की अस्वच्छता अथच मलीनता अल्प हो जाती है।

गृह निर्माण करने के लिये ऐसी पृथ्वी निश्चित करनी चाहिये जहां पानी गहराई पर हो और जहां चिकनी मिट्टी न हो क्योंकि ऐसी मृत्तिका आर्द्र रहती है। और जहां बालू की पृथ्वी न हो जोकि बहुधा भींगी होती है और इसलिये उस में से रोग उत्पादक विषमय वाष्प निकलती हैं। गृह बनाने के लिये स्वास्थ्य के विचार से सर्वोत्तम पृथ्वी वह है जिस में कंकड़ अथवा खरी मिट्टी हो। परन्तु यह भी है कि अच्छी से अच्छी पृथ्वी बुरे नलों से बुरी हो जाती है। यदि नल बुरे प्रकार से बनाये जावें तो भी थोड़ेही अवगुण के कारण बहुत दूर तक पृथ्वी अस्वच्छ अर्थात् गंदी हो जाती है।

घर बनाने के लिये स्थान निश्चित करने में सदा ध्यान रखना चाहिये कि जहां तक सम्भव हो अपर भवनों से पृथक हो। सब से उत्तम स्थल किसी टीले के ढालुवें स्थान पर होगा जिस के समीप वृक्ष हों परन्तु गृह की भित्तियों से लगी हुवे न रहें। नल प्रभृति मुख्य रहने

के आयतन से दूर हों और समीप के भवनों की नलें भवन के बहुत सन्निकट न आमिलें। यदि मैदान में भवन बनाया जावे तो इस बात का ध्यान रखना अवश्य है कि गृह के निकट नाले इत्यादि न हों क्योंकि आर्द्र वायु से सदा हानि पहुंचती है। यह भी चाहिये कि जिस पृथ्वी पर गृह बने उस पर प्रायः पानी एकत्रित न हुआ करे। गृह निर्माण करने में यह भी ज्ञात करना समुचित है कि अच्छा और उपयुक्त पीने का पानी समीप मिल सकता है अथवा नहीं। घरों के बीच गलियों में कम से कम भवन की उंचाई के समान अन्तर होना चाहिये और घर के पीछे भी खुली जगह रहना उत्तम है निस्सन्देह यदि भवन के सन्निकट उपवन हो तो बहुत ही उपयोगी होगा। निदान ऐसा स्थल निश्चित करना चाहिये जहां अधिक से अधिक वायु और प्रकाश आ सके और अच्छा पानी विशेष अर्थात् अधिक मिल सकें।

प्रायः यह रीति है कि भवन की बाहरी भीतों के बनाने में पूरा ध्यान नहीं दिया जाता और इसलिये प्रायः उन पर सील आ जाती है। चाहिये कि ऐसी भीतों की नेव कड़ी मिट्टी तक ले जावें। इस बाहरी भीत और घर की मुख्य भीत के मध्य में कुछ चबूतरा रखना भी उत्तम है जिस में बाहरी पृथ्वी की सील गृहाभ्यन्तर न प्रवेश करे। भवन निर्माण करने में नल और नालियों पर बहुत ध्यान रखना चाहिये। और इन बातों का भी ध्यान रखना अति आवश्यक है। (१) स्वास्थ्य के लिये अधिक प्रकाश की आवश्यकता होती है और इसलिये खिड़कियों का रखना अवश्य है (२) वायु आने जाने के लिये खिड़कियों को ऐसा होना चाहिये कि आयतन की छत के सन्निकट तक होवें (३) सज्याभवन सब से नीचे के भाग में न रखना चाहिये (४) मलस्थान (पायखाना) बाहरी भीत के समीप बनाना चाहिये। गृह के आयतन (कमरे) जितनेही बड़े होंगे उतना ही उत्तम है। खुरे परिसर (दालान) से भी उपयोगिता होती है क्योंकि वायु के आवागमन में सुगमता होती है। आंगन रखना भी अतीवोत्तम है किन्तु उस के

अति निकट नल न होना चाहिये। पाकालय के लिये सर्वोत्तम स्थान भवन का ऊपरी भाग है।

परिश्रम।

जो व्यक्ति अपने प्रियपुत्रों को श्रम करने का स्वभाव लगा देता है वह उन्हें धन प्रदान की अपेक्षा बहुत अधिक लाभवान पदार्थ प्रदान करता है।

श्रम से ऐसे २ काम सिद्ध होते हैं जिन्हें सुस्त और आलसी मनुष्य असंभव समझते हैं। परिश्रमी मनुष्य जितना उचित है उस से अधिक काम करता है, और आलसी मनुष्य उचित से कम। वह मनुष्य जो परिश्रम और चातुर्य्य से अपना कार्य सिद्ध करता है एक निर्मल नद समान है जो बहने से और निर्मल होता जाता है और जिस पृथ्वी पर से बहता है उसे उर्वरा करता जाता है।

कठिनाइयों का सामना करना और उन पर विजय पाना मनुष्य के लिये सब से अधिक आनंद की बात है। इस से उतर कर प्रयत्न करना और विजय पाने के योग्य होना है।

नितान्त आलस्य की दशा में कश्चित व्यक्ति प्रसन्न नहीं रह सकता। निष्कार्य रहने से काले पानी जाना उत्तम है।

परिश्रमी मनुष्य हाथ के बल से धनिक हो सकता है। आलसी मनुष्य का जीव कामना करता है किन्तु उसे कुछ नहीं मिलता।

हिस्पानिया देश में एक कहावत है कि प्रेत (शैतान) प्रत्येक व्यक्ति को लालच दिखाता है पर आलसी मनुष्य प्रेत ही को ललचाता है।

श्रम की रोटी अत्यंत मिष्ट होती है क्योंकि इस को सावधानी से खा सकते हैं।

हरेस ने यह वार्ता लिखी है कि किसी गंवार को एक नदी उतरनी थी वह कूल पर इस आशा से खड़ा रह गया कि शीघ्र सम्पूर्ण जल बह जायगा तब पार चले जावेंगे। क्योंकि यह नदी छोटी थी किन्तु बड़े

वेग से बहती थी। परन्तु नदी बहती ही गयी। इसी रीति से आलसी लोग अपना समय नष्ट करते जाते हैं कि कोई अच्छा अवसर हस्तगत हो।

लार्ड स्पिनोला ने एक दिवस सर हारेसवेर से यह प्रश्न किया कि "आप के भ्राता महाशय किस रोग से मरे" उन्हों ने उत्तर दिया कि "कुछ न करने के कारण मरगये" फिर उन्हों ने कहा कि "निस्सन्देह किसी बड़े सेनापति (जनैल) के मारडालने के लिये यह बहुत (काफ़ी) है"।

एक मनुष्य ने लिखा है कि " प्रायः लोग अनुमान करते हैं कि आलस्य अर्थात् काम न करना स्वर्गीय सुख है, किन्तु उचित तो यह है कि इसे नारकीय दंड समझना चाहिये।

एक मनुष्य सात वर्ष तक निगड़बद्ध था। इस समय में उस का यह नियम था, कि कतिपय, आलपीनों को वह, नोत्वशः अपने आयतन में फैलाता, और फिर उन्हें चुन कर कुरसी की भुजा पर उन को फैलाकर अद्भुत प्रकार के स्वरूपों को बनाता, कारागार से मुक्त होने पर वह अपने मित्रों से प्रायः यह चर्चा करता था कि यदि मैं इस काम में न लगा रहता तो कुछ संदेह नहीं कि मैं उन्मत्त हो जाता।

एक विद्वान मनुष्य ने यह शिक्षा दी है कि ' यदि तुम को आहार प्राप्त करने के लिये परिश्रम की आवश्यकता न हो तो भी इस को औषधि की रीति से प्यार करो ' आलसी मनुष्य इस बात से अधिक घबराता है कि क्या करें परिश्रमी मनुष्य की अपेक्षा जो अपना कर्तव्य सम्पादन करने में कुछ नहीं रुकता। काम से चित्त स्वास्थ्य की अवस्था में बना रहता है किन्तु आलस्य से चित्त बिगड़ जाता है और उस में मुर्चा लग जाता है और जो व्यक्ति काम करने के परिवर्त्तन में केवल मन बहलाना चाहेगा उसे थोड़े दिनों में कुछ काम न रह जायगा।

पांथियामस नामक एक स्थान में पहले कुछ भी कृषीकर्म न होता था और न वहां पर लोग बसते थे। एक चीनी व्यापारी वहां प्रायः जाया करता था वह अत्यन्त प्रवीण और मतिमान था। उस ने देखा कि पृथ्वी उर्वरा है पर उसे कोई काम में नहीं लाता। उस ने विचार किया

कि क्या करना चाहिये। उस ने बहुत से श्रमजीवियों को एकत्र किया और वहां के राजपुत्रों से जा मिला और उन से अपनी रक्षा का प्रबन्ध कराया। बेटेविया और फ़िलीपैन जाते समय पूरबवालों की बहुत सी नवीन रचनाओं (ईजादों) को सीख लिया, मुख्यतः प्राचीरनिर्माण की विद्या को वहां पर प्रांतिस्थिर करने केलिये चीनवालों को पुलिस की भांति रखा। उसे व्यापारियों से जो लाभ हुआ उस से भीतें बनवाईं और तोप समूह रखे। इन सब बातों से उसे निकटवर्ती जातियों के आक्रमण से त्राण हुआ। श्रमजीवियों में पृथ्वी को बांट दिया और किसी प्रकार के टिकस इत्यादि का बखेड़ा न रखा। उन लोगों को खेती के उत्तम उत्तम यन्त्र भी दिये। नीति वही बनायीं जो प्रत्येक जगह मनुष्य को प्राकृतिक रीति से आवश्यक है और पहले स्वयं तदानुकूल आचरण उत्तेजना पूर्वक करने लगा। अपने को सिधाई परिश्रम मितव्ययिता दयालुता धर्मज्ञता का उदाहरण बना दिया। कियत काल में यह अवस्था हो गई कि प्रत्येक देश के परिश्रमी लोग वहां जाकर बसने लगे। सबलोग आने पाते थे, वन काट डालेगये, चातुर्य्य से चावल की खेती होने लगी, खेत सींचने के लिये नदियों से नहरें काटी गईं और शस्य अथच धान्य ऐसी उत्तमता से होने लगी कि प्रयोजन से अधिक होने के कारण व्यवसाय होनेलगा। निदान एक मनुष्य के परिश्रम से सहस्रों मनुष्य लाभ उठाने लगे।

हिस्पानिया के रचयिता लोपडीवेगा ने जितनी रचनायें की हैं उतनी कदाचित किसी ने न की होगी उस के लिखे १८०० नाटक के कौतुक नाटकालयों में हो चुके हैं। उस ने २१ ग्रन्थ पद्य में लिखे हैं। उस ने अपने विषय में यह लिखा है कि मैं पांच ताव काग़ज़ को नित्य लिखता हूं। इस प्रकार गणित करने से ज्ञात होता है कि उसने आयु भर में १३३२२५ ताव लिखे। एक बार उस ने ५ पुस्तकें १५ दिवस में लिखीं।

प्रख्यात भिषक गेसेंड़ी के समान परिश्रमी पढ़नेवाला कदाचित कोई नहीं हुआ है। वह तीन बजे प्रातष्काल उठता और ग्यारह बजे

तक पढ़ना लिखता। इस के उपरान्त अपने मित्रों से समागम करता। बारह बजे यत्किंचित भोजन करलेता किन्तु पानी के अतिरिक्त और कुछ न पीता तीन बजे से फिर अपने काम में लगता और आठ बजे रात तक तन्मय रहता। फिर कुछ खाकर दश बजे सो रहता।

नृपति विलियम तृतीय की पट्टराज्ञी मेरी प्रायः यह कहा करती कि "आलस्य को मैं मनुष्य का चित्त भ्रष्ट करनेवाली वस्तु समझती हूं। यदि मनुष्य के चित्त को कथित कार्य न रहे तो अवश्य मन निकृष्ट विचारों को अपना सहकारी बनालेगा। इस लिये जब मुख्य कार्य न रहे तो मन बहलाने के लिये ऐसी बातें करनी चाहियें जिन से अन्त में कथित निकृष्ट प्रभाव न उत्पन्न हो।

स्नान का प्रभाव (असर)।

प्रत्येक प्रकार के जल से स्नान करने का अभिप्राय यही है कि शरीर में उस श्रेणी की ऊष्मा आ जावे जो उस की मुख्य ऊष्मा से विभिन्न है। नहाने का प्रभाव वर्णन करने के प्रथम यह जानना अवश्य है कि शरीर की प्राकृतिक ऊष्मा का कैसा स्वभाव है और यह कैसे प्राप्त होती है। स्वास्थ्य की दशा में मनुष्य के शरीर की गरमी ९८ और ९९ अंश के मध्य होनी चाहिये। प्रत्येक ऋतु में और प्रत्येक दशा में पूरी स्वस्थता स्थिर रखने के लिये इस अंश की गरमी की आवश्यकता होती है। ध्रुव के निकट के अत्यन्त शीतल प्रदेशों में शरीर की गरमी ९८·६ अंश पर होती है यदि इस में कुछ अंतर होता भी है तो अज्ञात होता है। शीतप्राय देशों में शरीर में यह शक्ति है कि अपनी गरमी उपस्थित रखे और ऊष्ण देशों में शरीर अपनी शीतलता उपस्थित रखने की शक्ति रखता है। इस में संदेह नहीं कि यह बात आश्चर्य की है किन्तु इस का कारण यह है कि शरीर में ऐसी शक्ति है कि उस से गरमी की उत्पत्ति और उस की हानि बराबर कर दी जाती है। खाने के रासायनिक परिवर्त्तनों और शरीर के अवयवों के ऐसे ही परिवर्त्तनों से गरमी उत्पन्न होती है ठीक उसी रीति से जैसे कि अंगीठी में

कोयला जलाने से गरमी उत्पन्न होती है। इस जलने का परिमाण और उस की उलूणता जो पदार्थ खाया जाता है उस के परिमाण और स्वभाव पर और शारीरिक व्यायाम की तीव्रता और जीवन के अपर व्यवहारों पर निर्भर है। शरीर का सब से तीव्र अंश रुधिर है उसी के द्वारा शरीर में ज्वलनक्रिया के बहुत से व्यवहार होते जाते हैं। और उस के तीव्र भ्रमण से जो सम्पूर्ण शरीर में होता है शरीर के सब से दूर के अवयव भी एकही गरमी के अंश पर बने रहते हैं। रुधिर की गरमी उस रासायनिक संयोग पर निर्भर है जो शरीर के भागों में हुआ करता है और इसी रीति पर शरीर के अवयवों का जलना निर्भर है।

रुधिर उत्पन्न होने की शक्ति और परिमाण इन बातों पर निर्भर है। हृदय के व्यवहार की शक्ति पर और रक्त पहुँचानेवाली शिराओं के परिमाण पर जो कि पुट्ठों के प्रभाव से फैल और सिकुड़ सकती हैं। रीढ़ के भीतर की रस्सी सी वस्तु के ऊपरी भाग के आधीन रुधिर की नालियां रहती हैं, और यदि इस स्थान पर कुछ धक्का (सदमा) पहुंचे तो शरीर में ज्वलनक्रिया के व्यापार पर कुछ अधिकार नहीं रह जाता और शरीर की गरमी वा तो परमित श्रेणी से अधिक हो जाती है वा न्यून हो जाती है। यहां तक कि मनुष्य का जीवन आपत्ति में पड़ जाता है। क्योंकि कभी ऐसी अवस्था में गरमी घट जाती है और कभी बढ़ जाती है इस का कारण अभी तक नहीं ज्ञात हुआ है। उन गरमी के अंशों (दरजों) का विस्तार बहुत अधिक नहीं है। जिन के बीच शरीर की गरमी होने से मनुष्य के जीवन का स्थिर रहना संभव है। यदि शरीर की गरमी १०८ अंश तक बढ़ जावे अथवा ७६ अंश तक घट जावे तो कालकवलित होने में कुछ भी संशय नहीं। नियमित अंश से ७ अंश अधिक अथवा न्यून होने में मनुष्य का जीवन आपत्ति में पड़ जाता है। जब कि यह देखने में आता है कि कितने कम अंतर में जीवन पर कैसा धक्का लग जाता है तो निस्सन्देह यह आश्चर्य की बात ज्ञात होती है कि कैसे मनुष्य के शरीर की गरमी समान बनी रहती है। मनुष्य के शरीर के शीतल होने का

यह कारण है कि फेफड़ों से पानी की भाप निकला करती है और शरीर की त्वचा से भी विशेष कर यह व्यापार हुआ करता है (यदि शरीर की त्वचा पर थोड़ी सी मदिरा डाल दें और वहां पर फूकें तो शरीर से भाप निकलने के कारण वह भाग तत्काल शीतल हो जाता है)। इन के अतिरिक्त शरीर के तल से अनुक्षण भाप निकलने के कारण और उन वस्तुओं द्वारा गरमी निकल जाने के कारण जो शरीर से छूई जाती हैं शरीर में शीतलता आती रहती है।

जब शीतल जल से स्नान करते हैं तो उस का प्रभाव यह होता है कि तत्काल शरीर का तल शीतल हो जाता है और थर्मामिटर से जांचने से यह ज्ञात होता है कि शरीर की गरमी का अंश घट गया। यह भी देखने में आता है कि त्वचा का रंग कुछ पीतवर्ण हो जाता है। जब कि तल शीतल होता है उस समय रुधिर की गरमी अधिक होती है। इस का कारण यह है कि इस दशा में शरीर के भीतर ज्वलनक्रिया का व्यापार बढ़ जाता है। इस की उपपत्ति यह है कि नाड़ी तीव्र हो जाती है श्वास शीघ्र शीघ्र लेते हैं और फेफड़ों से कार्बोनिक एसिड वायु का अधिक परिमाण बाहर निकलता है। अचानक सर्दी ज्ञात होती है और भेजे पर इस का प्रभाव होने से कर पद कांपने लगते हैं। जब कियत कालपर्यंत शीतल तोय में नहाते रहते हैं तो रुधिर की गरमी कम होने लगती है। (कभी कभी तीन अथवा चार अंश तक) नाड़ी मंद हो जाती है श्वास लेना धीमा हो जाता है और शरीर भर में सुस्ती ज्ञात होती है। जब पानी से पृथक हो जाते हैं तो चमड़े की नलियां फैल जाती हैं और त्वचा की शीतलता के परिवर्त्त कुछ गरमी आती है जिस के कारण आलस्य के परिवर्त्त कुछ सुख ज्ञात होता है। यह गति अति शीघ्र तब होती है जब कि अल्प काल तक स्नान किया जाय और जब स्नान का प्रभाव अचानक डाला जाय। जितने ही अल्प काल तक स्नान करें उतनाही अल्प अंत में रुधिर की गरमी की न्यूनता होती है किन्तु ऐसी अवस्था में शरीर के भागों को अधिक शक्ति प्राप्त होती है। जितनाही अधिक समय तक स्नान करें उतनाही अधिक शरीर को शीतल करने का प्रभाव होता है

गरम पानी में स्नान करने का यह प्रभाव है कि शरीर के तल की गरमी और रुधिर की गरमी कुछ बढ़ जाती है नाड़ी और श्वास क्रिया में तरलता होती है और फेफड़ों से अधिक कार्बोनिक एसिड वायु निकलने लगता है। त्वचा की नालियाँ फैल जाती हैं और जल की गरमी के अनुसार शरीर का तल अरुण हो जाता है। शीतल जल की अपेक्षा अल्पोष्ण जल में अधिक काल पर्यंत स्नान कर सकते हैं। किन्तु जो जल अधिकोष्ण हो और देर तक उस में स्नान करें तो सम्भव है कि मूर्च्छा अथवा अचेतन्यता आच्छादन कर लेवे। गरम पानी में स्नान करने के उपरांत त्वचा की दशा बहुत सुकुमार हो जाती है और नलियां अत्यन्त सिकुड़ जाने की प्रवृत्त होती हैं इस अवस्था में शरीर के भीतर बुरे और निकृष्ट प्रभाव का भय रहता है। किन्तु जो त्वचा की रक्षा की जावे और किसी गरम आयतन अथवा पर्यंक पर जा रहें तो अत्यन्त स्वेद शरीर से बहिर्गत होता है। शीतल तोय से स्नान करने में अवयवों (अङ्गों) की कठोर होने की कामना होती है किन्तु गरम पानी से स्नान करने में कठोर और श्रांत अवयव कोमल हो जाते हैं। यदि दिन भर आखेट अथवा ऊपर कथित व्यायाम करते रहें तो उस के उपरांत गरम पानी से स्नान करने से परमानन्द प्राप्त होता है।

गरम अथवा सर्द पानी में स्नान करने का अंतिम फल यदि साम्य (एतदाल) के साथ स्नान किया जाय तो समीप २ एक ही है अर्थात् त्वचा में रुधिर परिभ्रमण की तरलता। दोनों दशाओं में शरीर के भीतर श्वासक्रिया की उन्नति हो जाती है जो इस बात से प्रगट है कि फेफड़ों से अधिक कार्बोनिक एसिड निकलता है। यदि बराबर कुछ दिन तक सर्द अथवा गरम पानी में नहावें तो इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शारीरिक अवयव जो इस कारण से शीघ्र शीघ्र जलते हैं उन के फिर बनने की युक्ति करते रहें। इसलिये उचित है कि साधारण और शक्तिदायक आहार खावें और अत्यन्त निर्मल वायु में श्वास लेवें।

ईर्षा अर्थात् डाह।

केवल ईर्षाही एक ऐसी बुराई है जिसे मनुष्य प्रत्येक स्थान पर और सर्वदा कर सकता है। यह ऐसी वस्तु है कि कभी दबी नहीं रह सकती और इस कारण इस के फल सदा ज्ञात हो जाते हैं और इस से सदा भय रहता है।

किसी यशस्वी मनुष्य का नाम श्रवण करतेही ईर्षावान पुरुष के हृदय में आग बलउठती है। यदि किसी धनवान व्यवसायी का नाम सुनता है तो यही कहता है कि पोत का कौन ठिकाना क्योंकि यह काष्ठ-निर्मित होता है और उस द्रव्य का कौन भरोसा जो वायु पर अवलम्बित है। ऐसे लोग जब किसी योग्य पुरुष की उन्नति श्रवण करते हैं तो उन्हें अत्यन्त दुःख होता है।

ईर्षा संसार में इतनी अधिक है कि यह एक साधारण बात हो गई है और लोग इस का अधिक बिचार नहीं करते और प्रायः जब तक हम लोगों पर इस का कुछ प्रभाव नहीं होता तब तक इस पर कुछ ध्यान भी नहीं देते। जब ऐसा अवसर आता है कि एक मनुष्य बिना किसी को दुख दिये किसी उत्तम गुण अथवा कार्य में बढ़ने का प्रयत्न करता है और बहुत से अपरिचित लोग निष्प्रयोजन उस का पीछा करते हैं और ईर्षा करके लोग उस के अपयश की युक्तियां सोचते हैं। और जब ईर्षा-वान लोग उस के घरवालों को नहीं छोड़ते अथवा उस की व्यतीत बुराइयों को प्रगट करते और जब उस के लघु त्रुटि अथवा अवगुण को बढ़ा कर हंसते हैं तब उस के हृदय में यह बात आती है कि ईर्षावानों पर तुच्छता की दृष्टि से देखना चाहिये न कि केवल उन पर हंसना चाहिये, तब उस को यह भी ज्ञात होता है कि यदि मनुष्य के हृदय से ईर्षा सी बुरी वस्तु निकल जावे तो जीवन का हर्ष कितना बढ़ जावे।

जो लोग समूह में रहना चाहते हैं उन के लिये यह बुराई सब बुरा-इयों से बढ़ कर है क्योंकि इस से तुच्छ बात में सत्यता और हर्ष जाता रहता है। यदि कोई मनुष्य किसी धनाढ्य को लूटलेवे तो जितना वह

लेता है उतना ही उस को लाभ पहुंचता है किन्तु जो मनुष्य किसी के अच्छे नाम की बुराई चाहता है उसे कुछ बहुत प्रख्याति नहीं मिलती।

प्लूटार्क ने लिखा है कि ईर्षावान लोग सिंघो के सदृश हैं जिन को शरीर में लगाने से केवल हानिकर विकार निकल जाते हैं। वह उन कीड़ों के समान हैं जो शरीर के सड़े विभागों को पसन्द करते हैं यदि शरीर के अच्छे भाग पर जा रहें तो बिना मलीन अथवा भ्रष्ट किये उसे नहीं छोड़ते। ऐसे मनुष्य यदि किसी यशस्वी पुरुष के चाल चलन को बुरा नहीं कह सकते तो उस के कार्यों को बिगाड़ कर वर्णन करते हैं। ईर्षा प्रायः ऐसे लोगों में भी होती है जो और प्रकार से बहुत सद् व्यक्ति, सुशील, और योग्य (कामिल) हैं।

स्यूशियस नामक एक रोम का निवासी था। उस के स्वभाव में ईर्षा और बुराई इतनी थी कि वह विख्यात हो गया था। एक मनुष्य ने उसे किसी दिन अत्यन्त शोकित देख कर कहा कि वा तो स्यूशियस के ऊपर बहुत भारी आपत्ति पड़ी है वा अपर किसी मनुष्य को बहुत अधिक लाभ हो गया है।

नृपति टैबीरियस के समय में ऐसा संयोग हुआ कि एक भवन की मेहराब टेढ़ी हो गयी और लोगों ने यही बिचार किया कि फिर सीधी नहीं हो सकती। किन्तु एक शिल्पी ने उसे सीधी करने की प्रतिज्ञा की। उस ने बहुतसी युक्तियों को कर के अन्त को उसे सीधी किया। नृपति को परमाश्चर्य हुआ किन्तु साथही हृदय में ईर्षा का संचार हुआ और डाह उत्पन्न होगया। उसे मुद्रा तो दे दिया परन्तु स्वदेश बहिष्कृत कर दिया। कुछ दिवसोपरांत वही मनुष्य पुनः नृपति समीप उपस्थित हुआ। वह एक शीशे का गिलास लेता आया और इसे नृपति के अभिमुख पटक दिया। यह गिलास सिकुड़ गया किन्तु टूटा नहीं और इ फिर उस ने ज्यों का त्यों कर दिया। उस ने बिचार किया कि ऐस शिल्पकर्म अवलोकन कर नृपति प्रसन्न होगा किन्तु इस के बिपरी हुआ। टैबीरियस की ईर्षा और उत्तेजित हो गयी और उस ने आ

दी कि कारीगर का शिरच्छेदन कर दिया जावे। उस ने यह भी कहा कि सृष्टि में शीशे का ऐसा गुण प्रचलित होगा तो सोने और चांदी का मूल्य घट जावेगा।

नृपति मैक्सिमियेनस जो बड़ा अत्याचारी था उस ने देखा कि कांस्टेंटैन क्षणक्षण वृद्धि करता जाता है और लोग उसे बड़ा सद्व्यक्ति ज्ञात करते हैं। उस के हृदय में ईर्षानल प्रज्वलित हुआ और उस ने कांस्टेंटैन को सेना का कर्नैल नियत करके सारमेशियन लोगों के विरुद्ध लड़ने को भेजा इस विचार से कि वह संग्राम में निहत होगा। राजकुमार ने जय पायी और वहां के नृपति को बद्ध कर लाया। उस के लौटने पर नृपति ने जान बूझ कर उस के सम्मुख एक व्याघ्र छुड़वादिया जिस से उस को लड़ना पड़ा। किन्तु कांस्टेंटैन ने व्याघ्र को मार डाला और उस के पदाति और अधिक उस का सम्मान करने लगे। निदान धीरे धीरे उस ने राज्य भी हस्तगत किया।

सिकन्दर को किसी संग्राम में एक कठिन व्रण लगा और उस के अच्छे होने पर उस ने अपने मित्रों का एक निमंत्रण किया। इस निमंत्रण में मेसिडोनिया का कोरिगस भी उपस्थित था। यह मनुष्य साहस और शक्ति में अति प्रसिद्ध था। जब उस को मदिरा का मद हुआ तो उस ने एथेन्स के पहलवान डयाक्सियस को ललकारा। उस ने लड़ना स्वीकार किया और स्वयं नृपति ने दिवस नियत कर दिया। उस दिन सहस्रों मनुष्य एकत्रित हुये। दोनों लड़नेवाले अपने मित्रों और देश निवासियों के साथ आप्रस्तुत हुये। नृपति सिकन्दर भी आया। एथेन्स का पहलवान केवल लाठी लिये था किन्तु कोरिगस शिर से पदतल पर्यन्त संपूर्ण शस्त्रों से सज्जित था। कोरिगस ने बहुत प्रकार से चाहा कि डिआक्सियस को विजित करे और अन्त में करवाल ग्रहण करने चला। किन्तु उस ने कूद कर कोरिगस को पटक दिया और उस की ग्रीवा पर अपना पग रख दिया। सिकन्दर नृपति ने उसे छोड़ देने की आज्ञा दी। एथेंस के पहलवान को बड़ी सुख्याति हुई किन्तु इस के कारण सिकन्दर का चित्त उस के विमुख हो गया और मेसिडन के

सम्पूर्ण सभ्य ईर्षावान हो गये। उन्हों ने एक निमंत्रण में गुप्त रीति से उस को कुर्सी पर एक स्वर्णचषक (प्याला) रख दिया इस लिये कि उस का उपहास हो। लोगों ने अन्वेषण कर के चषक निकाला और उस को इतनी लज्या हुई कि वह चला गया। अपने घर पर आकर उस ने मित्रों के हाथ सिकन्दर के निकट इस आशय का एक पत्र भेजा कि मैं निरपराध हूं और लोगों की ईर्षा से यह हुआ है। इस के उपरांत उस ने अपना घात किया। सिकन्दर को उस की मृत्यु पर बड़ा शोक हुआ, यद्यपि कि जब तक वह जीवित था सब को उस से महती ईर्षा थी।

जब नृपति प्रथम रिचर्ड और फिलिप एक साथ पेलेस्टेन में लड़ते थे तो रिचर्ड ने ऐसे २ साहसों को किया कि सब लोगों की दृष्टि उसी की ओर आकर्षित होती थी। इस से फिलिप को बड़ा खेद हुआ और वह रिचर्ड के महत्व को न सह सका। प्रत्येक बात में वह ईर्षा से लड़ाई करने लगा और अन्त को गृह पलट आने पर उस ने प्रत्यक्षतया संग्राम करना प्रारंभ कर दिया और रिचर्ड के देश को आक्रमण किया।

ऐरिस्टैडीज़ अत्यन्त न्यायवान व्यक्ति था परन्तु एथेन्स के निवासियों ने उसे देशबहिष्कृत करने की आज्ञा दी, एक ग्रामीण ने ऐरिस्टैडीज़ के विरुद्ध बहुत प्रयत्न किया और जब उस से किसी प्रष्टा ने प्रश्न किया कि "ऐरिस्टैडीज़ ने तुम्हारे साथ क्या बुराई की है जो तुम उस के विरुद्ध कटिबद्ध हो?" तो उस ने उत्तर दिया "हम से जान पहचान भी नहीं है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति उसे बड़ा न्यायशील कहता है और यह सुनते २ हम थक गये और हमें क्रोध का आवेश हो गया"।

असत्य संभाषण।

असत्य से निकृष्टतर कश्चित कर्म हीन और अयोग्य नहीं। तीन कारण से प्रायः लोग इस को ग्रहण करते हैं प्रथम कीना, द्वितीय कादरता, तृतीय अभिमान (शेखी)। इन तीनों बातों में से चाहे किसी दृष्टि से कोई असत्य संभाषण करे। किन्तु फिर भी वह स्वार्थसाधन में

चूक जाता है क्योंकि असत्य सर्वदा तत्काल अथवा समय पाकर खुल जाता है कभी अन्तर्हित नहीं रह सकता। यदि हम रिपुता से असत्य संभाषण करें और यह चाहें कि किसी मनुष्य के ऐश्वर्य अथवा सुख्याति की हानि हो तो इस में संशय नहीं कि कियत काल तक हम उसे क्षतिग्रस्त बनावेंगे किन्तु फिर अन्त में उलटा हम को क्षतिग्रस्त होना पड़ेगा। क्योंकि जब हमारा असत्य प्रगट हो जाता है तो हम अपने उस अवगुण पूरित और अयोग्य उद्योग औ विचार के कारण नष्ट हो जाते हैं और उस के उपरांत जो कुछ कि बुराई हम अपने प्रतिवादी की वर्णन करते हैं कल्पना किया कि वह सत्य भी हो तो लोग उस को कलंकारोपण समझते हैं। प्रायः जब हम लोगों के मुख से कोई अनुचित बात निकल जाती अथवा हम से कोई अपराध वा दोष क्रियमाण होता है तो हम लोग भय और लज्जा के कारण से उस के छिपाने के लिये भांति भांति की युक्तियां करते बात बनाते और असत्य संभाषण करते हैं। परन्तु जब असत्य प्रगट हो जाता है तो हम और अधिक लज्जित होते हैं और हम को और अधिक क्षतिग्रस्त होना पड़ता और लोगों की दृष्टियों में निकृष्ट और अधम होना पड़ता है। यदि दैवात कथित अपराध हो जाय तो उत्तमता और कुलीनता इसी में है कि हम स्पष्टतया उस को स्वीकार करलें क्योंकि येही रीति सर्वोत्तम अपराध के प्रतिकार और उस के क्षमा कराने की है। बात बनाना-बहाना करना—सत्य बात के छिपाने केलिये युक्ति युक्त प्रलाप करना असत्य में परिगणित है और इसी के समान अधम कर्म है। कतिपय मनुष्य एक दूसरे प्रकार के असत्य सम्भाषण को समीचीन जानते हैं और उसे हानिकर नहीं समझते। वस्तुतः एक तात्पर्य्य में वह ऐसा हो है क्योंकि उस असत्य से किसी मनुष्य की हानि नहीं होती व्यतीत असत्य सम्भाषण करनेवाले के। इस प्रकार का असत्य, मद (शेखी) से जो अल्पज्ञता (बेवकूफ़ी) का फल है उत्पन्न होता है। वे लोग अद्भुतों और अपूर्वों का व्यापार करते हैं अर्थात् ऐसी अद्भुत वस्तु का अवलोकन करना वर्णन करते हैं कि जिस का अस्तित्व हुई नहीं है।

और कभी ऐसी अपूर्व वस्तु की चर्चा करते हैं कि जिस को उन्हों ने आंख से भी न देखा होगा केवल इसी प्रयोजन से कि हमारी प्रशंसा हो क्योंकि वह अनुमान करते हैं कि यह सब वस्तुयें दर्शनीय समझी जाती हैं यदि हम उन का देखना वर्णन करेंगे तो लोगों की दृष्टि में हमारा सन्मान व सत्कार अधिक होगा। यदि किसी अपूर्व बात की चर्चा कभी किसी समागम में हुई होगी अथवा कश्चित अद्भुत और अपूर्व कर्म कभी कहीं संगठित हुआ होगा तो वह अवश्य यह वर्णन करेंगे कि उस बात को मैं ने अपने कानों से सुना है उस कर्म का मैं नेत्रावलोकित (चश्मदीद) साक्षी हूं। प्रायः ऐसे कठिन कार्मों के विषय में जिन को बड़े २ लोगों ने कभी हाथ तक भी न लगाया हो अथवा जिन को उन्हों ने चूमचाट कर त्याग दिया हो वह वर्णन करते हैं कि मैं ने उन कार्यों को सिद्ध किया है। सदा ऐसे मनुष्य अपने मुंह मियांमिठ्ठू बने रहते हैं और अपने मन में यह समझते हैं कि ऐसे मद के कारण लोगों की दृष्टि में हमारा सन्मान और महत्व होगा अथवा कुछ नहीं तो इतना अवश्य होगा कि इस समय उपस्थित सभासदजन हमारी ओर प्रवृत्त हो जायंगे। यद्यपि कि यह कुछ भी नहीं होता वरन ऐसे लोग और अधिक अधम और तुच्छ बनते और अविश्वस्त समझे जाते हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति यह विचार करता है कि जब निष्प्रयोजन स्वाभिमान निर्वाचन अथवा जतानेके अभिप्रायसे वह इतना असत्य सम्भाषण करता है तो उस समय कितना अधिक असत्य सम्भाषण करेगा जब उस को कुछ लाभ होगा अथवा उस का कांक्षित स्वार्थ सिद्ध होता होगा। यदि कश्चित वस्तु हम ने ऐसी अपूर्व और अप्राप्य देखी हो जो विश्वास अथवा अनुमान योग्य न हो तो उत्तम यह है कि हम उस के वर्णन करने से विमुख रहैं इस हेतु कि किसी मनुष्य को हमारी सत्यता पर अणुमात्र भी संशय न होने पावे। यह ठीक है कि युवतियों को पातिव्रत और सत्यशीलता में इतनी सुख्याति व यश अर्जन करने की आवश्यकता नहीं है जितना पुरुषों को सत्यता और सचाई में सुख्याति लाभ करना आवश्यक विषय है। कारण इस का यह है कि स्त्री के लिये सम्भव है व

भली हो यद्यपि पतिव्रता और सत्यशीला न हो किन्तु पुरुष के लिये सम्भव नहीं कि वह विना सत्यता के भला अथवा सद व्यक्ति हो। सत्यता व्यतीत कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिस के कारण से हम संसार में इस रीति से रहें कि न हमारे धर्म में निर्बलता प्रविष्ट करे न और हमारे महत्व व पानिप में बट्टा लगे। हम बहुत सुगमता से प्रत्येक मनुष्य की सत्यता को उस की समझ और बूझ के अटकल से ज्ञात कर सकते हैं अर्थात् जो मनुष्य जितना मतिमान, समझवाला, होता है उतना ही वह सच्चा और सत्यभाषी होता है।

इस में संदेह नहीं कि असत्य भाषण और छल करने से बढ़ कर कोई नीच और तुच्छ वस्तु नहीं है। क्योंकि यह ऐसी वस्तु है कि बड़े भारी असत्यभाषी भी दूसरे के असत्य को नहीं सहन कर सकते।

असत्यभाषी को दो आपदायें हैं अर्थात् न वह किसी पर विश्वास करता है, और न उस पर कोई विश्वास करता और एक असत्य को सत्य बनाने के लिये वह कई असत्य बोलता है। इस से बढ़ कर कोई कपट नहीं है कि पहले किसी को विश्वास दिलावें और फिर उसे धोखा दें।

जब किसी की सचाई जाती रहती है तो वह विवश हो जाता है और तब उसे सत्य और असत्य दोनों से कुछ लाभ प्राप्त नहीं होता।

प्रत्येक दशा में सत्य बात को किसी वस्तु की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। सत्य सदा उपस्थित रहता है और हम लोगों की जिह्वा पर प्रस्तुत रहता है यह बिना जाने हुये मुख से निकल आता है किन्तु असत्य में बड़ी कठिनाई होती है अनुमान करना और विचार दौड़ाना पड़ता है और एक असत्य के लिये कई एक और झूठ बनाने पड़ते हैं। यह वही दशा है कि जैसे कच्ची और पोली नेव पर भवन बनावें तो इस के स्थित रखने के लिये सदा उपाय करना पड़ता है और अंत में व्यय भी पक्की नेंव पर बनाने की अपेक्षा अधिक पड़ता है। सत्यता एक अत्यंत पुष्ट वस्तु है और इस में कुछ भी कच्चापन नहीं है। सत्यता स्वच्छ और खुली रहती है इसलिये उसे अन्वेषण करने की

आवश्यकता नहीं होती। जब असत्यभाषी मनुष्य अंधकार में चलते हुये अपने को विचारता है तो वस्तुत: उस को सब बहाने स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं और इस को शीघ्र यह ज्ञान नहीं होता कि उस का झूठ पकड़ गया। वह इसी विचार में भूला रहता है कि हम दूसरों को अज्ञ, और अल्पज्ञ बनाते हैं परन्तु वास्तव में वही उपहासित होता है।

अगस्टस सीज़र के विषय में यह वर्णन है कि उस ने अपने सम्पूर्ण देश में ऐसा मनुष्य अन्वेषण कराया जो जीवन भर में कभी असत्य न बोला हो किन्तु ऐसा मनुष्य केवल एक हस्तगत हुआ। सीज़र ने उसे सत्यता के मंदिर का मुख्य पंडा नियत किया।

थीब्स का विख्यात सेनापति (जरनेल) इपैमिनांडस सत्यता से इतना स्नेह रखता था कि वह कभी हास्य (दिल्लगी) में भी असत्य सम्भाषण का प्रयत्न न करता।

महात्मा ईसा के ३०० वर्ष पूर्व यूनान में ज़ीनोक्रिटोज़ नामक एक भिषक रहता था। उस ने अफ़लातून से शिक्षा पाई थी। एथेन्स के निवासियों को उस की सत्यता का इतना विश्वास था कि एक दिवस जब उस ने न्यायधीशों के समक्ष अपने वर्णन की पुष्टता के लिये शपथ करने की कामना की तो न्यायधीशों ने कहा कि केवल तुम्हारा कहना बहुत है शपथ की कुछ आवश्यकता नहीं।

बारसिलोना के समीप जाते समय ड्यूक ओसना को आज्ञा मिली थी कि निगड़बद्ध सेवकों को छोड़दें यदि उचित समझें। वह एक पोत पर गये जिस पर बहुत से बन्धुये थे और उन से प्रश्न किया कि तुम लोग क्यों बद्ध हुये। सब ने एक बहाना निकाला और यही वर्णन किया कि निरापराध बद्ध हुये। केवल एक मनुष्य ऐसा मिला जिस ने कहा कि "मैं यह कभी नहीं अस्वीकार कर सकता कि मेरा दण्ड समुचित हुआ, मुझे रौप्यमुद्रा की आवश्यकता हुई, इस लिये मैं ने चोरी की कि भूखों न मर जाऊं" ड्यूक ने कहा "तुम कपटी मनुष्य हो कर इन धर्मात्मा मनुष्यों में क्या करते हो यहां से चले जाओ" इस को सत्यता के लिये बन्धन से छुट्टी मिली।

यह बात दिखलाने के लिये कि असत्य के साथ सच्ची वीरता कभी नहीं रह सकती एकिलीज़ ने एक बार यह कहा " मैं उस मनुष्य को नरक से अधिक तुच्छ समझता हूं जो ऐसा अधम है कि कहता कुछ है और अभिप्राय और ही कुछ रखता है" ।

भिषक कुलशिरोमणि अरस्तू से किसी मनुष्य ने पूछा कि मनुष्य असत्यभाषण से क्या लाभ प्राप्त करता है तो उस ने उत्तर दिया कि लाभ यही है कि "उस के सत्यभाषण पर कोई विश्वास नहीं करता" ।

भिषक एपोलोनियस प्राय: यह कहा करता कि "वह मंद भाग्य जो असत्य भाषण करता है उसे सदव्यक्ति होने का कुछ अभिमान न चाहिये और वह अपने को सेवकाई की पदवी को पहुंचा देता है" ।

सर टामसब्रौन ने यह लिखा है कि "प्रेत भी परस्पर असत्यभाषण नहीं करते क्योंकि प्रत्येक समाज में सच बोलना अत्यंत आवश्यक है और नरकीयसमज्या भी बिना इस के स्थित नहीं रह सकती" ।

डाक्टर हाथार्न ने असत्य के विषय में इस प्रकार लिखा है "और सब बुराइयों की कभी कभी प्रशंसा भी हो जाती है और लोग बुराई करने के सहयोगी भी होते हैं। डाकू और बधिक के भी साथ देनेवाले मिलते हैं जो उन की वीरता युक्ति और अपनी जाति का पक्षपात अथवा उस पर दयादृष्टि और उस का सन्मान करते हैं किन्तु झूठे को सब कोई लघुता करता है और लोग उसे त्याग देते हैं। उसे घर के लोग भी समाधान नहीं कर सकते हैं। वह किसी कुटुम्ब में नहीं मिल सकता जहां पर उस के अपराधों को लोग अच्छी बात अनुमान करें। उस का न कोई मित्र रहता है और न कोई सहायक " ।

मिडाक्यूलस एक अभिनव युवक था जिस का स्वभाव बहुत अच्छा था किन्तु असतसंसर्ग के कारण उस ने अत्यन्त असत्य भाषण सीख लिया। उस के मित्र उस की बातों पर कभी विश्वास नहीं करते थे बरन लोग उस पर प्रत्येक अपराध की शंका करते थे क्योंकि वह प्राय: अस्वीकार करता और उस का दंड कभी कभी निरपराध भी होता। सच न बोलने के कारण जो जो आपत्तियां उस पर दिन २ पड़ती थीं सब

की क्षति दृष्टिगत होनेलगी। उस के पास एक रम्योपवन था जिस में बहुत अच्छे २ फल लगे थे और उपवन के सुसज्जित करने में वह बहुत मन लगाता था। एक बार ऐसा हुआ कि उस के प्रतिवासी के चतुष्पदों ने उस के उपवन की टट्टी तोड़ दी और फूल के वृक्षों पर चलने लगी। वह उन्हें निकाल न सका तब उस ने एक आरामरक्षक (बाग़बान) से सहायता मांगी। उस ने उत्तर दिया कि 'तुम हमें अज्ञ बनाया चाहते हो' उस ने उस के कहने का विश्वास न किया और उस के साथ गया। एक दिन मैडाक्यूलस का पिता घोड़े पर से गिर पड़ा और उस की जांघ टूट गई। मैडाक्यूलस वहां पर उपस्थित था और इस आपत्ति से उस को बड़ा खेद हुआ किन्तु उस से कुछ सहायता न हो सकी। इस कारण से उस ने अपने पिता को हिम पर अवश छोड़ दिया और घोड़े को शीघ्र शीघ्र चला कर मैनचेस्टर पहुंचा इस लिये कि किसी से सहायता मांगे। सब लोग जानते थे कि वह बड़ा भारी असत्यभाषी है। जिस से वह कहता वह उस का कथन न सुनता और किसी ने उस की बात का विश्वास न किया। निदान वह विवश हो कर नेत्रों में जल भरे हुये अपने पिता के पास लौट गया। किन्तु उस के पहुंचने के प्रथम एक गाड़ी उधर से जाती थी जिस पर लोगों ने उठा कर उसे घर तक पहुँचा दिया। मैडाक्यूलस प्रायः एक छात्र के विषय में झूठ बोला करता और वह छात्र पाठशाला जाते समय उसे बहुत मारता। बहुत दिनों तक उसने मार सहन किया किन्तु अन्त में उस ने पिता से कहा। उस के बाप ने अपने पुत्र का विश्वास न किया किन्तु मारनेवाले लड़के के घरवालों को उपालंभ दिया। उन्हों ने यह उत्तर दिया कि "तुम्हारा लड़का विख्यात असत्यभाषी है और उस के कहने को हम लोग नहीं मानते" झूठ के स्वभाव से लोग ऐसी ही आपत्ति में पड़ते हैं। जब उसे अपनी बुराई का भेद ज्ञात हुआ तो उसे बड़ा पश्चात्ताप और शोक हुआ। उस ने अपना कान ऐंठा जो कहता उस पर ध्यान रखता बहुत कम बोलता और बड़ी सावधानी से बात करता। परीक्षा से उसे प्रमाणित हो गया कि सत्य बोलना असत्यभाषण की अपेक्षा अत्यंत

सुगम है। धीरे धीरे सत्यभाषण उसे बहुत ही भला लगने लगा और अंत को सच का उस को इतना प्यार हुआ कि वह हास्य में भी असत्य भाषण न करता। इस के उपरांत उस के मित्र उस का सन्मान करने लगे लोग उस का विश्वास करने लगे और स्वयं उस के हृदय पर बोझ न रहने लगा।

असतसंसर्ग

यह प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य समूह में रहना पसंद करता है। ऐसे जीवधारी भी जो बहुत पशुप्रकृति (वहशी) नहीं हैं झुण्ड में रहना उत्तम समझते हैं और अपने साथियों में रहने से उन्हें ढाढ़स रहता है। मनुष्य मुख्यत: समाज में रहने योग्य बना है और इसे अकेले कुछ भी आनंद नहीं प्राप्त होता। यदि कश्चित व्यक्ति को अपर मनुष्यों से पृथक कर दें तो उसे इतना संकष्ट होगा कि वह कदाचित जीवन नष्ट करदेना स्वीकार कर लेगा। जीवन के बहुत से सुख समाज में रहने से प्राप्त होते हैं किन्तु समाज ही से जीवन की बहुत सी बुराइयां भी होती हैं। और मनुष्य आपत्ति में पड़ता है। यह बात अच्छी नहीं ज्ञात होती कि सब से अधिक उपयोगी वस्तु से बड़ी बुराई दृष्टिगत हो किन्तु संसार में प्राय: ऐसा होता है। समाज में रहना अत्यंत आवश्यक है परंतु सत्पुरुषों का संसर्ग होना कठिन विषय है। असत्संसर्ग अति शीघ्र होता है यह उस वायु की भांति साधारणत: उपस्थित है जो अपने साथ महामारी और नाना रोगों को लिये चलती है जो व्यक्ति असत्पुरुषों का साथ करता है उस का चित्त निस्सन्देह बहुत मलिन है। एक बड़े व्यक्ति ने लिखा है कि "मुझ को बतलादो कि तुम्हारी संगति किस से है तो मैं बतला दूंगा कि तुम क्या हो" साथ रहना बिना दोनों मनुष्यों की प्रसन्नता के नहीं हो सकता, समवयस्क सदा साथ हो जाते हैं और यह असंभव है कि एक सदव्यक्ति जो अपनी उन्नति पर दत्तचित्त है और जो स्वकार्य को पूर्णतया करना चाहता है ऐसे मनुष्य की संगत में हृष्टरहे जो आलसी, मूर्ख, और दुष्ट हों। क्योंकि

दो पृथक वस्तुयें परस्पर मिलकर कभी नहीं रह सकतीं। जब चित्त और बात चीत दो मनुष्यों की किसी प्रकार एक दूसरे के अनुकूल न हों तो निस्संदेह दोनों में विवाद और झगड़ा होगा। यह भी कभी संभव है कि ऐसे दो मनुष्य परस्पर केवल विवाद करने और झगड़ने की प्रसन्नता से मिल सकते हैं। समूह में रहने का यह अभिप्राय कदापि नहीं है। इस के लिये प्रमाण की कुछ आवश्यकता नहीं है कि बुरे साथियों से मिलना बुरा चित्त प्रगट करता है जैसे यदि कोई मनुष्य एक भारी पुस्तकालय में से बुरी २ पुस्तकें अन्वेषण कर के पढ़े जब कि उत्तमोत्तम पुस्तकें उपस्थित हैं तो यह कदापि नहीं कथन कर सकते कि वह भली प्रकृति का है।

ऐसी कहावत है कि एक मनुष्य ने किसी उपबन में एक मृत्तिका-खंड उठा लिया और उससे प्रश्न किया कि "तू कस्तूरि तो नहीं है कि तुझ से ऐसी सुगंध निकलती है?" उस ने उत्तर दिया कि "मैं केवल रजखंड हूं किन्तु कतिपय दिवस पर्यंत पाटलकुसुम (गुलाब) के साथ रहा हूं"।

लोगों की संगति के विषय में एक कवि ने यों लिखा है कि "पुनीत मनुष्य के साथ तू पुनीत हो जायगा, महद्व्यक्ति के साथ तू भी महान बन जायगा, निर्मल पुरुष के साथ निर्मल होगा, और धृष्ट (गुस्ताख़) के साथ तू धृष्टता (गुस्ताख़ी) सीखेगा"।

राजकुमार यूज़ीन के विषय में एक रचयिता ने यह वर्णन किया है "इस राजकुमार में वे सब सद्गुण प्रस्तुत थे जिन से मनुष्य का स्नेह और सन्मान होता है। वह स्वरूपमान और प्रसन्नचेता था वह तीव्र बुद्धि और साहसी था। अवस्था तो केवल १५ वर्ष की थी परंतु विद्या और काव्य में अद्वितीय था उसे संग्रामीयजीवन व्यतीत करने का बड़ा अनुराग था और इसी के अनुसार अपने स्वभाव को ठीक कर लिया था यहां तक कि कभी २ उपधान का भी व्यवहार न करता। नृपति ने बड़ी सावधानी से उसे शिक्षा दी और अगत्या उन्नति के लिये जितनी विद्या हैं सब सिखाया। इस राजकुमार से कैसी अधिक

भागा थो किन्तु अन्ततोगत्वा सब कोई नैराश्य हुआ। उसी बुरे सहवासियों की संगत पड़ो हुई उदाहरणों को अवलोकन कर वह अपने को न रोक सका। जब अनुक्षण बुरे लोग उस के साथ रहनेलगे उन के बर्ताव से उन के हृदय में अप्रसन्नता न होतो उन के साथ रहते रहते वह बुरे से बुरा हो गया और कियतकालोपरांत अपनो नेकचलनी को खो कर अपना जोवन भो खो दिया"। इस से स्पष्ट प्रगट होता है कि किसी भले चित्त पर भी असत्‌संसर्ग का कैसा बुरा प्रभाव होता है।

इंगलिस्तान का एक विख्यात विदुषहेल अल्प वय में बुरे लोगों की संगत में प्राय: रहता। एक दिन वह अपने सहवासियों के साथ नगर के बाहर निकल गया और सब लोग भली भांति मद्पान करने लगे। उन में से एक मनुष्य ने इतनो मदिरा पोलो कि ठोक मृतक समान हो गया। सबों के हृदय में भय का संचार हो गया और बहुत सी युक्तियां कीं वह सुधि में न आया। यह दशा देख कर हेलसाहब ने एक आयतन में जा कर उस का किवाड़ बंद कर लिया और परमेश्वर से प्रार्थना की कि वह मनुष्य जीवित हो जावे, और अपनो बुराइयों के लिये क्षमा मांगो। उस ने यह भी प्रण किया कि अगत्या न मैं ऐसे लोगों को संगत करूंगा और न जीवन पर्यंत मद्पान करूंगा। उस ने अपनो एक पुस्तक में संसर्ग के विषय में यह शिक्षायें लिखी हैं "अपने सहवासियों की भलाई करो उन के अभिमुख, सर्वदा परमेश्वर का नाम सम्मान पूर्वक उच्चारण करो कोई बुरा उदाहरण उन को न दिखलाओ और यदि वह तुम से अधिक जानते हों तो उन से लाभ प्राप्त करो"।

सिम्ब्री लोगों के विरुद्ध जब मेरियस लड़ने को भेजा गया तो उस के पदाति शत्रु के लोगों को ओर अच्छोतरह से नहीं देख सकते थे क्योंकि वह बहुत बड़े और विकृत स्वरूप के थे। किन्तु जब पदातियों ने कतिपय दिवस पर्यंत उन का स्वरूप देखा तो फिर आन्तरिक भय जातारहा और अंत को उन पर विजयी भी हुये। इसी प्रकार से बुरी संगत को भी दशा है पहले तो सत्पुरुष बुरे लोगों से ग्रस्त होता है और

निकट नहीं जाना चाहता किन्तु धीरे धीरे मिल जाता है। बुराई प्रारंभ करने में उस के हृदय पर कुछ बोझ पड़ता है और वह विचार करता है कि कुछ त्रुटि कर रहे हैं। कियतकालपर्यंत चित्त दोलायमान और असमंजसग्रस्त रहता है, किन्तु जब अपने साथियों का उदाहरण अवलोकन करता है तो हृदय का बोझ उठ जाता है और बुराई का कुछ प्रभाव हृदय पर नहीं होता। अंत में चित्त ऐसा हो जाता है कि भारी बुराई का भी कुछ प्रभाव नहीं ज्ञात होता। झटपट कोई मनुष्य बुरा नहीं होता वरन धीरे धीरे।

अतएव सब से पहला कार्य यह है कि अच्छी संगत ग्रहण करे। इस लिये कि मनुष्य का चाल व चलन ठीक हो और उस के हृदय पर उत्तमोत्तम प्रभाव उत्पादन हों। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी संगतको उत्तम ज्ञात करता है और कहता है कि "जैसे हमारे समाज के लोग हैं वैसे कहीं नहीं"। परंतु इस के कतिपय प्रकार है।

पहला प्रकार वह समाज है जिस में कि उच्चवंशजात उच्चपदप्राप्त और सभ्य लोग एकत्र हों। इस समाज में किसी किसी समय वे लोग भी युक्त हो जाते हैं जो कि पदवी और वंश में हीन हैं किन्तु योग्यता और विद्या में अधिक हैं अथवा किसी मुख्य बात में विख्यात अथवा किसी कला और गुण में अद्वितीय और सुख्याति रखते हैं। किसी समय वे लोग भी अपनी बलात्कारी से ऐसे समाज में युक्त हो जाते हैं जो न उच्चपदप्राप्त न उच्चवंशजात न विद्वान और न किसी गुण व कला में प्रख्यात हैं बहुत से ऐसे हैं जो दूसरे माननीय लोगों के द्वारा और कथन से ऐसे समाज में प्रवेश पाते हैं। वस्तुत: इस प्रकार की संगति उत्तम है। इस समाज के लोगों का चालचलन रीति परिपाटी और बातचीत ऐसी उत्तम, सभ्य और सुष्ट होती है कि वह निस्सन्देह ग्रहण करने के योग्य है। ये लोग संसार के बर्ताव और आचार व व्यवहार से पूरी पूरी अभिज्ञता रखते हैं।

दूसरे प्रकार की अधमों और नीचों की संगत जिस में कि प्राय: बिगड़े हुये और उच्चवंशजात भी युक्त होते हैं किन्तु ढंग सब के निकृष्ट

और अयोग्य होते हैं। ऐसी संगत में जाने से बचो किन्तु उस संगत के लोगों पर हंसो नहीं उन को बुरा भला न कहो और न उन्हें लघुता की दृष्टि से देखो।

तीसरे प्रकार का वह समाज जिस में सम्पूर्ण विद्वान उच्चशिक्षित विदुष और पंडित एकत्र हों यद्यपि लोग इस संगतवालों का सन्मान करते हैं तथापि यह संगत कुछ बहुत प्रशंसनीय (माकूल) नहीं होती क्योंकि सामाजिक महाशय सांसारिक परिपाटी नियम और बर्ताव से निपट अनभिज्ञ होते हैं और ऐसा ज्ञात होता है कि मानो वह संसार में रहते ही नहीं। ऐसी संगत में युक्त होने से एक लाभ निस्सन्देह होता है वह यह कि जब तुम किसी और समाज में जाओगे तो लोग इस विचार से कि तुम पंडितों की संगत में रहे हो तुमारा आदर औ सत्कार भली भांति सम्पादन करेंगे परंतु तुम सदा पथोय बातों और वैदिक ऋचाओं और पौराणिक उपाख्यानोंके अतिरिक्त कुछ न जानोगे। संसार की रीति और परिपाटी और सामाजिक विद्या से मुग्ध रहोगे। परीक्षायें कुछ न प्राप्त होंगी।

चौथे प्रकार का प्रसन्नचेता, रसिक, हास्यजनक बातों के कहनेवाले, और जानकार एवं कवियों का समूह। ऐसे समाज में नवबयस्क लोग प्राय: सानुराग युक्त होते हैं क्योंकि वहां उन का चित्त प्रसन्न होता है मन लगता है और बातचीत ज्ञात होती है। इस संगत में चाव से उठो बैठो परंतु न बहुत कम और न बहुत अधिक। युक्त होने से प्रथम जान लेना चाहिये कि उस में किन प्रकार के लोग एकत्र हैं उन के रंग ढंग कैसे हैं। ऐसे समाज में प्राय: हास्यप्रिय (दिल्लगीबाज़) मनुष्य भी युक्त रहते हैं। कोई लोग हास्य से ऐसा डरते हैं जैसा कि स्त्रियां शून्यतुपक से क्योंकि वह यह समझती हैं कि जहां तुपक शतबार भरी चलती है तो आश्चर्य नहीं कि एक बार बिना भरी भी चल जावे और हानि पहुंच जावे। तथापि इस संगत में युक्त होना उत्तम है और सामाजिक महाशयों से परस्पर मेल रखना उपयोगी है। परंतु इतना न मिलो कि दूसरी अच्छी संगत में जाना आना पूर्णतया त्यक्त कर दो

अथवा स्वयं कवि हो जाओ अथवा कवि बनने का प्रयत्न करने लगो।

पांचवें प्रकार का सदरुस्सुदूर न्यायाध्यक्ष वकील और राज कर्मचारियों का समाज। यह संगत भी उत्तम है उस में युक्त होने से भांति २ के लाभ और परीक्षायें प्राप्त होती हैं।

छठवें प्रकार की वह संगति जिस में कि मुख्य योग्यता अथवा किस मुख्य उत्तम कला व गुण जाननेवाले अथवा कारोबारी व व्योपार वृत्तिवाले एकत्र हों। यह समाज भी इस के योग्य है कि तुम उस में युक्त हो।

संक्षेप यह कि सदा अपने से उत्कृष्ट लोगों की संगत स्वीकार करो क्योंकि उन के कारण से तुम्हारा सन्मान और योग्यता प्रति दिन अधिक होगी। यदि तुम नीचों, बुरेचलन, बुरी योग्यतावालों, व्यभिचारियों, और मूर्खों की संगत में रहोगे तो तुम्हारा अवशिष्ट मान, सत्कार, पानिप, नाम और योग्यता मिट्टी में मिल जावेगी। भांति भांति की हानि होगी। श्रेष्ठ लोगों की संगति रखने से मेरा अभिप्राय उस संगति से नहीं है जिस में कि केवल कुलीन लोग हों वरन वह संगति अभिप्रेत है कि जिस में योग्यतावाले, विद्यावाले, परीक्षा वाले, और वे लोग युक्त हों जो संसार की रीति परिपाटी व्यवहार और वर्ताव से भली भांति अभिज्ञ हैं। सैकड़ों अज्ञता और बुराइयों की जड़ ममत्व है इसी कारण से प्रायः मनुष्य अपने से श्रेष्ट लोगों की संगति त्यक्त कर के उन लोगों की संगत ग्रहण करते हैं जो कि उन से योग्यता विद्या और प्रत्येक उत्तम बात में कम हैं ऐसा ममत्व वाला मनुष्य जब अपने से लघुतर लोगों की संगत में बैठता है तो इस में संदेह नहीं कि उस समाज के लोग उस से प्रत्येक बात में कम होने के कारण से उस की योग्यता और विद्या की प्रशंसा करते हैं और वह अपनी बड़ाई और प्रशंसा सुन २ कर फूला नहीं समाता। परंतु अल्पज्ञ यह नहीं समझता कि दिन प्रति दिन कुलीनता योग्यता और विद्या नष्ट होती जाती है। और अगत्या अच्छी संगति में युक्त होने के योग्य न रहेगा। तुम को यह ज्ञात हो चुका है कि कौन सी संगति से बचना चाहिये और किन लोगों की संगति ग्रहण करनी

चाहिये। ऐसे ही कतिपय और उपयोगी बातें जिन से तुम को ज्ञात होगा कि सामाजिक महाशयों को कौन २ सी प्रकृतियां ग्रहण करने के योग्य और कौन २ सी त्यक्त करने योग्य हैं।

मनोयोग।

वह मनुष्य कोई कार्य नहीं कर सकता और न कुछ आनंद प्राप्त कर सकता है जो कि उपस्थित वस्तु पर ध्यान नहीं देता अथवा अल्प काल पर्यंत उस वस्तु के लिये अपने दूसरे बिचारों को हृदय से दूर नहीं करता, यदि कहीं नृत्य अथवा कौतुक में कश्चित व्यक्ति बैठ कर अपने हृदय में रेखागणित के सूत्र सिद्ध करे तो लोग उस मनुष्य को अच्छा न समझेंगे वरन उस से असंतुष्ट होंगे। इस के अतिरक्त वह मनुष्य भी इस प्रकार से कभी गणितज्ञ नहीं हो सकता है। यदि तुम एक कार्य को एक नियत समय पर करोगे तो तुम को उस का कार्य के करने के लिये दिन भर में उपयुक्त समय प्राप्त होगा। परंतु यदि तुम दो कार्यों को एक ही समय में करना चाहो तो विश्वास है कि वर्ष भर में भी कश्चित अवसर हस्तगत न होगा और न वह कार्य कभी सिद्ध होगा। किसी वस्तु को बिचार की दृष्टि से देखना और उस की प्रत्येक बात पर हृदय से ध्यान देना मतिमान होने का लक्षण है। शीघ्रता—कोलाहल—तुमुलशब्द, और व्यग्रता चित्त की निर्बलता और मन के चलायमान होने का कारण है। वस्तुतः कश्चित कार्य अमनोयोग से नहीं हो सकता। अमनोयोग निपट अज्ञतर अथवा बौड़हपन है। केवल मनोयोग करना ही उपयुक्त नहीं है बरन यह समुचित है कि प्रत्येक वस्तु की वास्तवता का अति शीघ्र विवेचित कर लो जैसे एक गृह में बहुत से लोग हों और तुम भी उस समाज में हो तो उचित है कि तुम प्रत्येक व्यक्ति की चाल, बातचीत, ढंग, परिपाटी, चलन, को ऐसे चातुर्य्य, चालाकी, और फुरती के साथ जान लो कि उन को कथमपि इस विषय से अभिज्ञता न हो कि तुम उन को घूर रहे हो अथवा

उन की बातों का ध्यान कर रहे हो। ऐसी तीव्रता, ध्यान और चातुर्य्य जीवन में बड़ी उपयोगिता की वस्तुयें हैं यह सब बातें विचार व चिन्ता से प्राप्त होती हैं। जिन का चित्त अनोपस्थित रहा करता है अथवा जो ऐसी २ बातों पर मनोयोग नहीं करते अथवा उन सब वस्तुओं पर जो उन की आंखों के सामने होती हैं ध्यान नहीं देते वास्तव में वह अज्ञ और पागल हैं क्योंकि अज्ञ मनुष्य वह है जो किसी बात का कुछ ध्यान नहीं करता। पागल वह है जिस के चेत और सुधि अल्प काल अथवा सदा के लिये अनोपस्थित रहें। संक्षेप यह कि किसी मनुष्य को संसार की रीति और परिपाटी और उस के नियम प्राप्त नहीं हो सकते जब तक वह उन पर मनोयोग न करे। तुम बहुत से लोगों को देखोगे कि यद्यपि वह बहुत दिनों तक संसार में रहे हैं तथापि अमनोयोग और अनोपस्थितचित्त के कारण सांसारिक नियम से लघु बालकों के समान अनभिज्ञ हैं। ऐसे मनुष्य जहां जाते हैं नष्ट होते हैं लोग उन की भोलीभाली बातों और परीक्षाओं में अपरिपक्वता पर हंसते हैं मुख्यत: परोक्ष में उन पर प्रहास करते हैं और परस्पर उस पर आक्षेप करते हैं कि अहा! वह बड़े सीधे और सरल मनुष्य हैं। इन बातों से अभिप्राय उन का यह है कि वह बड़े अज्ञ (बेवकूफ़) और सांसारिक रीति और परिपाटी से निपट अनभिज्ञ हैं। प्राय: लोग मुख्य अभिप्राय और आंतरिक अनुराग के प्रगट करने में सदाचरण करते हैं और जब दूसरे उन के गुप्त अभिप्राय को समझ जाते हैं तो वह बहुत प्रसन्न होते हैं। जैसे कि कल्पना करो कि कश्चित व्यक्ति अनुपम कवि है किन्तु कामना उस की यह है कि लोग बिना मेरे कहे मेरी कविता की प्रशंसा करें। जो लोग कि मतिमान हैं और प्रत्येक बात पर मनोयोग करते रहते हैं वह इस अभिप्राय को उस के मुख और आकृति से तत्काल जान लेंगे और उसको हृष्ट करेंगे। इन के अतिरिक्त बहुत सी ऐसी छोटी २ मनोयोग की बातें हैं जो कि प्रगट में तुच्छ और लघु ज्ञात होती हैं किन्तु वास्तवमें अत्यंत उपयोगी हैं और लोग उन से प्रसन्न होते हैं। जैसे तुम ने किसी मनुष्य का निमंत्रण किया और उस को तुम किसी निमंत्रण में भोजन करते

देख चुके हो अथवा सुन चुके हो तो तुम को न्योते के समय यह स्मरण करना अवश्य है कि वह किस खाद्य वस्तु से प्रीति करता है। उस समय इस बात का ध्यान रखो कि उस के लिये वही आहार विशेष कर के बनवाओ और जब उस खाद्य वस्तु का पात्र उस मनुष्य के सन्मुख आवे तो तुम को यह कथन करना योग्य है कि "महाशय! मैंने असुक २ स्थान पर देखा था अथवा किसी से सुना था कि आप को असुक आहार बहुत प्रिय है इस कारण से मैंने आप के लिये यह बनवाया है"। यदि हम किसी मनुष्य पर इस कारण से हंसे कि वह पूपमोदक प्रभृति उत्त-मोत्तम आहारों से घृणा करता है अथवा हम असनोयोग से उन आहारों को उस के सन्मुख रख दें जो उसे प्रिय नहीं हैं तो वह मनुष्य हम से जी से अप्रसन्न होगा। तत्काल वह हृदय में अनुमान करेगा कि उन्हों ने हम को नीचा दिखाया अथवा अपमानित किया वा हमें चिढ़ाने की दृष्टि से ऐसा आहार हमारे सन्मुख रख दिया, और इन दोनों बातों को वह सदा स्मरण रखेगा। इस के विपरीत यदि तुम उस मनुष्य के लिये वह वस्तु बनवाओ जो उस को रुचिकर है और उन भोजनों को उस के सन्मुख न रखो जिन से वह घृणा करता है तो वह अपने हृदय में समझेगा कि तुम ने उस का बड़ा सन्मान किया और उस की बड़ी आवभगत की। आश्चर्य नहीं कि वह बिना किसी उपकार के अशुल्क (मुफ़्त) तुम्हारे इन भलाइयों के कारण से तुम्हारा मित्र बन जावे। यह सब बातें यद्यपि देखने में बहुत तुच्छ हैं किन्तु वास्तव में बड़े लाभ की बातें हैं। अपने हृदय में सोचो और स्मरण करो कि जब कोई मनुष्य तुम्हारे साथ इस प्रकार से बर्ताव करता है तो तुम उस से कैसे प्रसन्न होते हो और कितनी प्रीति करने लगते हो। इसी प्रकार समझो कि जब तुम किसी के साथ ऐसी भलाई करते होगे तो उस के हृदय में तुम्हारी ओर से कैसा स्थान होता होगा और वह तुम से कितना प्रसन्न होता होगा।

अभिमान ।

मनुष्य का प्राय: यह स्वभाव है कि वह अपनी बुद्धि, शरीर अथवा धन की वास्तविक वा अनुमानित उत्तमता के कारण यह समझता है कि हम सम्मानयोग्य हैं और यह विचार करता है कि अपर लोग हमारे अभिमुख हम से योग्यता इत्यादि में अल्प हैं और यही अभिमान कहलाता है. कश्चित ऐसी बुराई नहीं जो अभिमान की भांति बहुत धीरे से हृदय में प्रविष्ट हो जावे। मनुष्य जितना इस बुराई में ग्रस्त हो जाते हैं उतना अपर किसी में नहीं होते। अपने स्नेह पर प्रयत्न इस की जड़ स्थित हुई और अपना स्नेह करना मनुष्य के हृदय से पृथक नहीं हो सकता तथापि मनुष्य को वस्तुत: अभिमान करने का कश्चित विषय नहीं है प्रत्येक व्यक्ति में बुराइयां हैं संसार में पूरी योग्यता (कमाल) किसी वस्तु में नहीं है। इस में संदेह नहीं कि हमलोगों में बहुत सी अच्छी बातें उपस्थित हैं किन्तु उन पर उचित रीति से ध्यान देना चाहिये। फिर भी यही विश्वास होता है कि इन के कारण अभिमान करने का कश्चित कारण नहीं है। हमलोगों के शरीर की सम्पूर्ण उत्तमतायें केवल दो शब्दों से वर्णन की जा सकती हैं अर्थात् बल और सुन्दरता। बल के लिये अभिमान करना अत्यन्त छोटी बात है जिस में वृषभ और गर्धभ भी हम से बढ़ कर हैं। इस के अतिरिक्त थोड़े ही दिनों की मांदगी के उपरांत अथवा शरीर से थोड़ा रुधिर निकल जाने पश्चात् बड़ा भारी पहलवान भी एक लघु बालक समान अवश हो जाता है। तो किस को ऐसी वस्तु के लिये अभिमान करना चाहिये जिस का कुछ भी ठिकाना नहीं ? सुन्दरता क्या है ? इस के कारण नगर नष्ट हो गये, पदातियों की सेनायें विनष्ट हो गईं और इसी के कारण कितनों की भलाई जाती रही। शरीर पर क्लेश पड़ने से सुन्दरता जाती रहती है। मांदगी से इस का कुछ पता नहीं लगता और स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। जब शरीर से प्राण वियोग हो जाता है तो शरीर का क्या स्वरूप बन आता है। स्वरूपमान और सुन्दर मनुष्य को भी मरणोपरांत देखने को जी

नहीं चाहता यहाँ तक कि कतिपय दिवसोपरांत देखने से भय का उद्भावन होता है और कदापि स्पर्श करने की इच्छा नहीं होती और उसी शरीर से दुर्गंध निकलती है। ऐसेही मानसिक सम्पूर्ण उत्तमतायें विद्या और भलाई में सम्मिलित हैं। हमलोगों को अपनी विद्या अथवा ज्ञान के लिये सद्पूरित होना कदमपि समुचित नहीं है क्योंकि कितना अल्प ज्ञान मनुष्य को है और विद्या अथवा ज्ञान का अन्त यही जान लेना है कि हमलोग कितनी बातें नहीं जानते। नीतिज्ञ भिषक सोक़रात ने कहा है कि "यह जानना कि हमलोग कुछ नहीं जानते, हमारा सब कुछ ज्ञान अथवा विद्या है"। जब यह दशा है कि यदि मस्तक पर चोट लग जाय अथवा एक सप्ताह की मांदगी में भी मस्तिष्क में अन्तर पड़ जाय तो चेतही शेष नहीं रहता और सब वस्तुओं का ज्ञान जाता रहता है तो ऐसी बात के लिये क्या अभिमान करना चाहिये? यदि अपनी भलाइयों के विचार से अभिमान करें तो उस वस्तु के लिये अभिमान करना है जो हमारे पास नहीं है क्योंकि अभिमान से सब भलाइयां जाती रहती हैं और ऐसी दशा में कोई मत भी अभिमान करने की आज्ञा दे सकता है? कोई नहीं! क्योंकि सच्चे मत का सिद्धांत नम्रता है। प्रत्येक समय में और प्रत्येक देश में बुद्धिमान लोगों ने मनुष्य के अभिमान के विरुद्ध जहाँ तक बन पड़ा लिखा है और यह सिद्ध किया है कि सच्ची बड़ाई बड़े घराने के जन्म अथवा पदवियों से नहीं होती वरन केवल भलाई से। अपनेभूमीय धन और ऐश्वर्य के कारण जो मदान्वित होता है उस को अवश्य लघुता से देखना चाहिये क्योंकि वह इसी योग्य है। ऐसा अज्ञ मनुष्य यह नहीं जानता कि अपने धन को कैसे उत्तम कार्य में लगावे इसी से कुछ आश्चर्य नहीं कि वह धन के वास्तविक मूल्य को नहीं जानता।

मिश्र के नृपति सेयास का शासन जब अति उन्नतिशाली हुआ तो वह इतना मदान्वित हुआ कि जिस रथ पर आरूढ़ होता उस में अश्वों के परिवर्त्त में नरनाथों को जोतता। एक दिवस उस ने यह देखा कि एक नृपति पहिये की ओर बड़े ध्यान से देखता है। सेयास ने पूछा

क्यों ऐसे ध्यान से देख रहे हो ? उस ने उत्तर दिया कि "मैं अपनी आपत्ति में अपना समाधान कर रहा हूं क्योंकि देखता हूं कि पहिये का नीचे का आरा घूम कर फिर ऊपर जा रहता है" इस बात को सुन कर उस ने अपना स्वभाव छोड़ दिया।

फ़ेरोग्रोफ़ारा को इतना अभिमान था कि वह कहता कि परमेश्वर अथवा मनुष्य कोई हमारा राज्य नहीं ले सकता। थोड़े ही दिवसोपरांत उन के एक अधिकारी (अफ़सर) ने उस को ग्रीवा दबा कर मार डाला।

भिषक एम्पिडाक्लोस ने एक कठिन रोगार्त्त को नीरोग किया और जब लोग उस के विपरीत हुये तो यह सिद्ध करने को कि वह कभी न मरेगा अपने को एटना नामक ज्वालामुखी में गिरा दिया।

नृपति नीरो की स्त्री अत्यन्त मदपूरित थी। उस ने अपने घोड़ों के निमित्त स्वर्ण की लगाम बनवाई और चांदी अथवा सुवर्ण से उन की नाल बन्धवाती थी। उस ने पंच शत गदहियां पलवाई थीं जिन के दुग्ध से वह प्रायः स्नान करती। उस को अपनी सुन्दरता का इतना ध्यान था कि वह बुड्ढा होने के प्रथमही मरना चाहती थी।

ज़रक्सीज़ ने एशिया से योरप को सेना ले जाने के लिये एक सेतु बनवाया किन्तु दीर्घ प्रवाह (तूफ़ान) आया और सेतु टूटगया। इस पर उस ने आज्ञा दी कि समुद्र को तीन सौ कोड़े लगें और उस को बांधने के लिये उस में शृंखलें फेंकीजावें इस हेतु कि फिर उदंडता न करे। जब यह बातें होने लगीं तो उस ने कहा कि "आर्यदुराचार जल! तेरा स्वामी दण्ड की आज्ञा देता है तुझ को पसन्द हो वा न हो. किन्तु उस ने तेरे पार जाने का दृढ़ विचार किया है"।

हिस्पानिया में किसी अकिञ्चन युवती के तीन बालक थे और वह द्वार द्वार भिक्षा मांगती थी। कतिपय फ़रासीसी व्यापापारियों ने दयालु होकर उस से कहा कि अपने बड़े आत्मज को नौकरी करने दो उस ने स्पेन वालों के अभिमान से अस्वीकार किया कि नौकरी करने से हमारे वंश का अपमान होगा क्योंकि कुछ आश्चर्य नहीं कि यही बालक किसी दिवस स्पेन का महाराज हो जाय।

जब ज़रक्सीज़ यूनान पर आक्रमण करने का सामान करनेलगा तो ए
दिवस उस ने अपने राजकुमारों को बुलाया और कहा " इस अभिप्रा
से कि लोग यह न कहें कि हम ने केवल अपनी अनुमति व
ग्रहण किया, हम ने तुम लोगों को एकत्र किया है किन्तु स्मरण रखन
कि तुम लोग हमारी आज्ञा मानो न कि हम को परामर्श दो"।

हंस के महाराज अथला ने एक दिवस अभिमान करके यह कह
कि " उडुगण मेरे चरण पर गिरते हैं, पृथ्वी मेरे सामने कांपती है, औ
मैं अपर जातियों के लिये ईश्वरीय कोप हूं " निदान जिस दिवस उ
का विवाह होनेवाला था उस के मुख से रुधिर प्रस्रवण होने लग
और वह मर गया।

समय व्यतीत करना।

सुस्त बैठे रहना और कुछ कार्य न करना केवल अल्पज्ञता का लक्षण
ही नहीं है बरन इस से हृदय की बुराई भी प्रगट होती है। बुरे प्रका
से समय व्यतीत करने से बहुत सी और भी बुराइयां उत्पन्न होती
क्योंकि ऐसा मनुष्य जो आलसी है और कुछ भी कार्य नहीं करता थोड़
ही दिनों के उपरान्त दुष्टता करने पर उद्युक्त होगा; इस लिये मनुष
को उचित है कि अत्यन्त सावधानी से समय का व्यवहार करे और अच्
कामों में जिस से कुछ क्षति न हो समय व्यतीत करे। अपना समस्
कार्य उचित रीति से सम्पादन करना समुचित है और स्वास्थ्य अथव
मन बहलाने के लिये ऐसे कार्यों में समय व्यतीत करना चाहिये जिन
से हानि न पहुंचे। भिषक सेनेका ने लिखा है कि " हम सब यही
आपत्ति करते हैं कि समय नहीं मिलता किन्तु वास्तविक यह है वि
इतना समय मिलता है कि यह नहीं जानते कि इस में क्या २ करें
हम लोग वा तो अपना जीवन कुछ न करने में बिता देते हैं वा ऐसे
कार्य करते हैं जिन से कुछ लाभ नहीं अथवा जो कुछ करना उचित
है उसे नहीं करते। सदा यही आपत्ति बनी रहती है कि संसार
में थोड़े दिन हैं पर बर्ताव ऐसा करते हैं कि मानों यह दिन कभी
समाप्त न होंगे।

रोम के महाराजाधिराज वेस्पेसियन की यह दशा थी कि सदा रात को इस बात पर विचार करता कि दिन किस प्रकार व्यतीत किया जावे और जिस दिन अपनी समझ में वह कुछ अच्छा कार्य न करता उस दिन के लिये वह अपनी स्मृतिदायक (याददाश्त) पुस्तक में यह लिख देता कि "मैं ने एक दिन खो दिया"।

इंगलिस्तान के नरनाथों में आलफ्रेड अत्यंत मतिमान और अच्छा राजा हुआ है। उस की यह दशा थी कि उस के जीवन के प्रत्येक घंटे के लिये कुछ कार्य नियत था। दिन और रात का उस ने तीन आठ आठ घंटे का भाग किया। यद्यपि कि उसे मांदगी से बहुत क्लेश था किन्तु सोने खाने और व्यायाम के लिये उस ने केवल आठ घण्टा नियत किया था। शेष सोलह घंटे में आठ घंटे तक वह पढ़ता लिखता और ईश्वराराधन करता। आठ घंटा वह देशीयप्रबन्धों और कार्यों में लगा रहता। यह मनुष्य ऐसा मतिमान था कि वह समय को खिलवाड़ नहीं समझता और उस का यह अनुमान था कि समय नष्ट करने के लिये परमेश्वर के सामने उत्तर देना होगा।

प्रख्यात भिषक गॅसेडी के समान पढ़नेवाला कदाचित कोई नहीं हुआ। बहुधा वह तीन बजे प्रातःकाल सोकर उठता और ग्यारह बजे दिन तक पढ़ता लिखता। बारह बजे थोड़ा सा आहार करलेता और खाने के साथ जल के अतिरिक्त कुछ न पान करता। तीन बजे वह फिर पुस्तक लेकर बैठता और आठ बजे रात तक पढ़ता। इस के उपरांत कुछ आहार करके दस बजे सो रहता। उस का यह नियम था कि पृथक भाषाओं की कविताओं को वह कंठाग्र कर जाता। प्रति दिन ६०० दोहे कहता और लाटिन भाषा की ६००० कवित्त और दोहे उसे कंठस्थ थे। उस ने लिखा है कि "स्मृति शक्ति भी और स्वभावों के समान है। यदि तुम यह चाहो कि इस की उन्नति हो अथवा यह निर्बल न होने पावे जैसा कि अवस्था की अधिकता से इस की दशा होती है तो उचित है कि सदा इस का अभ्यास करते रहो और जहां तक सम्भव हो जो पढ़ो उसे स्मरण रखो। इस प्रकार से चित्त को आनंद

होता है और हृदय का पद उच्च श्रेणी पर बना रहता है"। उस ने अपने लिये ये शिक्षायें नियत की थीं। "परमेश्वर को जानना और उस से डरना। मृत्यु से कभी न डरना, और जब आये तब कुछ भी न अकुलाना। निष्प्रयोजन आशा न करनी और निरर्थ भय न करना। जो कुछ निर्दोष मनामोद आज हो सके उसे अगामि दिवस पर निर्भर न करना। जो कि आवश्यक वस्तु है उस के अतिरिक्त और किसी वस्तु की इच्छा न करना। बुद्धि के बल से अपने को अधिकार में रखना"।

सेनेका भिषक ने अपनी व्यवस्था इस प्रकार की लिखी है कि कोई दिन ऐसा न बीता कि वह कुछ न पढ़े अथवा लिखे और प्लिनी ने अपने कालक्षेप के विषय यह लिखा है "कभी कभी मैं आखेट खेलता हूं किन्तु उस समय भी मैं अपने साथ एक पुस्तिका रखता हूं इस अभिप्राय से कि जब तक सेवक लोग आखेट का सामान ठीक करें तब तक मैं कुछ उपयोगी कार्य करूं। यदि आखेटीय वस्तु न मिले तो भी कुछ मिला और खूखे हाथ गृह को न लौटे"।

एक पुस्तक में महाराज सिकन्दर के विषय में इस प्रकार लिखा है। "फ़िलिप के पुत्र सिकन्दर ने बहुत सी लड़ाइयां लड़ीं उस ने बहुत से दुर्गों को लेलिया पृथ्वी के प्रत्येक भाग में घूम आया बहुत सी जातियों को सामग्री लूट ली और उस के सन्मुख संसार के लोग कांपते रहे। इस सब के उपरांत वह रुजग्रस्त हुआ और उस को ज्ञात हुआ कि वह भी मरेगा"।

शोक है कि इस पर भी हम समय का सम्मान कितना अल्प करते हैं और उस के लाभ और उपयोगिता पर कितना कम ध्यान देते हैं। प्रत्येक मनुष्य की जिह्वा पर यह वाक्य रहता है कि समय अति अमूल्य पदार्थ है परन्तु थोड़े ऐसे हैं जो इस पर चलते और उस को हृदय से सत्य समझते हैं। योरप में धूप घड़ियों पर इस प्रकार के वाक्य खुदे रहते हैं 'गत समय पुन: हस्तगत नहीं होता' इसलिये कि प्रति दिन ऐसे वाक्य देखने और श्रवण करने से प्रत्येक मनुष्य के हृदय पर उस का प्रभाव हो और वह अपने समय को व्यर्थ नष्ट न करे। नववयस्क लोग

समय को इतना अधिक समझते हैं कि चाहे हम कितनाही व्यय करें तथापि बहुत कुछ शेष रह जाता है और काटे नहीं कटता। ऐसाही ध्यान प्राय: बड़े से बड़े धनवान को अकिञ्चन बना देता है क्योंकि वह यह समझता है कि चाहे मैं कैसाही अपव्यय न करूं परन्तु धन इतना अधिक है कि वह कदापि कम न होगा। समय उस जीवन का भाग है जिस से प्रिय हम को कश्चित वस्तु नहीं। किन्तु शोक! कि हम ऐसे प्यारे धन को भ्रम और आलस्य रूपी तस्करों से लुटवाते हैं। मतिमान मनुष्य अपने अमूल्य समय को सम्पूर्ण आय को महाजनों की भांति इस प्रकार व्यय करता है कि उस पर बहुत अधिक ब्याज मिले। वह अपना समय कभी आलस्य में नहीं काटता प्रत्येक समय किसी न किसी कार्य में लगा रहता है। यह साधारण रीति है कि अकार्यता सकल बुराइयों की माता है अर्थात् अकार्यता के कारण से सहस्रों प्रकार के दोष और अवगुण उत्पन्न होते हैं। संसार में आलसी मनुष्य से कश्चित मनुष्य तुच्छ और अधम नहीं होता। केटो जो रूम प्रदेश का एक बड़ा बुद्धिमान और सद्व्यक्ति था प्राय: कहा करता कि जीवन भर में मुझ से केवल तीन कार्य ऐसे हुये हैं जिन का मुझे बहुत शोक और पश्चाताप रहा करता है।

१—मैं ने एकबार अपना एक भेद अपनी स्त्री से कह दिया था।

२—एकबार मैं जलीय मार्ग से ऐसी ठौर गया जहां स्थलीय मार्ग से भी जा सकता था।

३—एक दिन मैं ने कुछ कार्य नहीं किया और वह दिन मेरा व्यर्थ नष्ट गया।

बदला लेना।

बदला लेना एक प्रकार के अभिलषित न्याय के समान है जिस की मूल का उन्मूलन करना नियमशास्त्र पर उतना उचित होता है जितना मनुष्य के चित्त को उधर लगाव हो। पहला अपराध तो केवल नियमशास्त्र (कानून) की अप्रसन्नता का कारण होता है। परन्तु इस

अधिकार का स्वयं बदला लेना, नियमशास्त्र को उसके अधिकार से च्युत कर देना है। इस में कोई संदेह नहीं कि बदला लेने में मनुष्य निज शत्रु के समानही कहा जायगा परन्तु क्षमा कर देने में उस का पद उच्चतर होगा क्योंकि क्षमा करना कार्य महाराजाधिराजों का है। मुझे भली भांति स्मरण है कि एक महात्मा का वचन है कि " अपराध से विरत होना (दर गुज़रना) मनुष्य का महद गुण है "। जो बात हो चुकी बीतगई फिर नहीं लौटने की। और विबुध को केवल वर्त्तमान दशा और आगामि की चिन्ता चाहिये। वह लोग जो विगत की चिन्ता में रहते हैं केवल अपने समय को नष्ट करते हैं। ऐसा कोई न होगा जो केवल किसी को सताने के लिये दुखदे बरन उस की इच्छा इस से किसी प्रकार का लाभ, प्रसन्नता अथवा बड़ाई प्राप्त करने की होती है। ऐसी दशा में हम किसी शरीरधारी से इस बात पर क्यों अप्रसन्न हों कि वह हम से अधिक अपना ध्यान रखता है। और यदि कोई केवल सताने ही के अभिप्राय से दूसरे को दुख दे तो उस की समानता कंटकों से की जा सकती है जो चुभने के अतिरिक्त और क्लेश पहुंचाने के व्यतीत और किसी प्रयोजन का नहीं। सब से अधिक उचित बदला लेना ऐसी ही बातों का हो सकता है जिन का प्रयत्न (इलाज) नियमशास्त्र से न हो सके। किन्तु इस दशा में भी यह बचाव आवश्यक है कि यह बदला लेना ऐसा न हो कि धर्मशास्त्र को उस की अपेक्षा दंड देने का अधिकार हो। नहीं तो वैरी लाभ में रहा और इधर एक के दो देने पड़े। कतिपय मनुष्य जब बदला लेते हैं तो प्रतिवादी पर यह प्रगट कर देना चाहते हैं कि इस को जड़ कहां से हुई। यह निस्सन्देह पहले से उत्तम है क्योंकि क्लेश उस को पहुंचाने की प्रसन्नता नहीं है बरन उस से घृणा कराने की, अधम, छली, कपटी, कायर प्रकृति, मनुष्य उस बाण के समान हैं जो अंधकार में आलगता है।

कासमस फ्लारिंस का महाराज अपने धोखा देनेवाले और निश्शील मित्रों के लिये अपनी शठता से यों कहा करता कि इनका अपराध क्षमा करने के योग्य नहीं। वह यों कहता कि " तुम ने वैरियों के

क्षमा करने की शिक्षा निस्सन्देह पढ़ी होगी, परन्तु मित्रों के अपराध से विरत होने का उपदेश कहीं न पढ़ा होगा" परन्तु जोब का कथन बहुत अनुकूल था कि "क्या हम अपने लाभ की संपूर्ण वस्तुओं को तो परमेश्वर से पावें और हानिप्रद कार्यों में उस की इच्छा पर सन्तुष्ट न रहें" और इसी प्रकार मित्रों की ओर भी यही बात सिद्ध होगी।

इस में कोई सन्देह नहीं कि दुष्टहृदय (कीनावर) मनुष्य अपने व्रणों को नित हरा रखता है जो यदि छोड़ दिये जावें तो भर चलें और अच्छे हो जावें। शास्त्रीय (शरई) बदला निस्सन्देह सर्वावस्था में उचित है, जैसे कैसर परटिनाक्स फ्रांस के नृपति तीसरे हेनरी की मृत्यु व बहुधा और कार्यों में, किन्तु आत्मीय बदला लेने में यह बात नहीं है; वरन दुष्ट हृदय लोग टोनही स्त्रियों के समान जीवन व्यतीत करते और क्षतिप्रद कर्मों में सर्बदा लिप्त रह कर अभ्याग्यत: व्यर्थ प्राण देते हैं।

बदला लेने से मनुष्य अपने शत्रु के समान हो जाता है किन्तु क्षमा कर देने से उस से श्रेष्ठ होता है। सहनशीलता अत्यन्त बुद्धिमानी की बात है और क्षमा करना हृदय की बड़ाई प्रगट करता है। जब बदला लेने को चित्त चाहता है तो किसी बुराई का ध्यान नहीं रहता बदला लेने की कामना से बहुत सी बुराइयां हुई हैं और उन की चर्चा इतिहास में है। यदि काश्चित व्यक्ति हम को सताना प्रारम्भ करे और हम उस पर दया प्रगट करना प्रारम्भ करें तो इस से बढ़कर कथित विजय उस पर प्राप्त नहीं हो सकती। वह मनुष्य जो कि बदला लेने के लिये ठहरा रहता है अपनी हानि की प्रतीक्षा करता रहता है। बदला लेने का प्रारम्भ क्रोध से होता है और इस का अन्त पश्चाताप होता है। सुले मान ने कहा है कि "मनुष्य अपनी मतिमानता से क्रोध को रोक रखता है और बदला न लेना उस की बड़ाई है"।

फ्रेडरिक महाराज ने हंगरी में एक भारी विजय पाई तब उस ने अपनी सेना के लोगों से यह कहा कि "हम लोगों ने बड़ा काम किया है किन्तु इस से भी भारी काम करना अब शेष है अर्थात् यह शेष है

कि अपने चित्त को वश में रखें लोभ को दबा दें और बदला लेने की कामना को छोड़ दें"।

द्वीप मेजार्का में एक दुर्ग का अधिप था जो अपने पास एक हबशी सेवक रखता था। किसी अपराध के लिये एक दिन उस ने सेवक को मारा किन्तु बहुत मारा। हबशी इस चिन्ता में प्रत्येक समय रहता कि कब बदला लें। निदान एक दिन अधिप बाहर गया तब सेवक ने भीतर से कपाट बन्द कर लिया। अधिप लौट कर बाहर खड़ा हुआ और द्वार खोलने की आज्ञा दी तब हबशी ने उसे गाली प्रदान की और उस के दो लड़कों को खिड़की के बाहर गिरा दिया और उस की युवती का अपमान किया। वह तीसरे पुत्र को भी मार डालने के लिये उद्यत था। अधिप ने उसे बहुत प्रार्थना की कि एक पुत्र का प्राण छोड़ दे किन्तु सेवक ने कहा कि केवल एक नियम के साथ स्वीकार कर सकता हूं वह यह है कि तुम अपनी नासिका छेदन कर डालो। अधिप इस नियम को स्वीकार किया और ज्योंहीं उसने अपनी नाक काटी त्योंहीं हबशी ने लड़के को बाहर फेंक दिया और आप भी दुर्ग पर से कूदपड़ा।

स्पेन की सेना का विख्यात सेनप कांडे जब फ्लांडरस देश में था तो एक सैनिक अधिकारी ने एक पदाति को कई बार बेंत से मारा। पदाति ने केवल यही कहा कि शीघ्र अधिकारी पश्चाताप करेगा कि क्या किया। १५ दिवस के उपरांत अधिकारी ने सेनप महाशय से एक ऐसा पदाति मांगा जो कोई भारी बीरता का कार्य कर सके और उस के लिये पुरस्कार नियत किया। यतः वह पदाति जिस ने मारखाई थी पलटन में सब से अधिक बीर था इसलिये इस काम के लिये वही मनोनीत हुआ और ३० साथियों को लेकर अत्यंत पुरुषार्थ से अपना कार्य सम्पादन किया। अधिप ने उसे पारितोषिक दिया किन्तु उसने पुरस्कार को अपने साथियों को बांट दिया और कहा कि "मैं रुपये के लिये नहीं कार्य करता हूं, यदि मेरी कार्यसम्पादकता उत्तम हुई है तो उचित है कि मैं अधिकारी (अफसर) बनाया जाऊं। १५ दिवस व्यतीत हुआ कि आप ने मुझे बेंत द्वारा ताड़ना की थी और मैंने कहा

था कि आप शीघ्र पश्चाताप कीजियेगा"। अधिकारी ने उसे तत्काल पहचान लिया और उस से क्षमा प्रार्थना की और उसी दिन उस को उच्चपद पर नियत किया।

डेमेट्रियस ने एथेंस के लोगों के लिये बहुत कुछ किया। एक बार वह अपनी स्त्री और लड़कों को छोड़ कर संग्राम के लिये देश से बाहर गया। वह लड़ाई में विजित हुआ और फिर अवश हो कर एथेंस को भागा। उस को कुछ भी भ्रमन था कि उसे उस को मित्र शरण के लिये स्थान न देंगे किन्तु उन लोगों ने उसे एथेंस में आने न दिया और उस को स्त्री और उस के लड़कों को इस बहाने से उस के पास भेज दिया कि एथेंस में यह आशंका है कि उन के शत्रु आकर उन्हें लेलें। इन बातों से डेमेट्रियस के मन को बड़ा खेद हुआ क्योंकि यदि कोई धर्मात्मा मनुष्य किसी को प्रीति करे और वह निर्दयता से बर्ताव करे तो चित्त को बड़ा क्लेश होता है। कुछ दिनों के पीछे डेमेट्रियस के अच्छे दिन लौटे वह बहुत सी सेना लेकर एथेंस को गया। उन्हों ने डेमेट्रियस से क्षमित होने की आशा न की और यही प्रतिज्ञा की कि लड़ कर प्राण दे देंगे और यह आज्ञा प्रचार कर दी कि जो पहले आधीन होना स्वीकार करे वह बध किया जावे किन्तु इन लोगों ने यह विचार न किया कि नगर में आहारीय वस्तु इतनी कम है कि कतिपय दिवसों में खाने को रोटी न मिलेगी। अंत को जब बहुत क्लेश उठा चुके तो उन में से एक मतिमान मनुष्य ने यह कहा कि "उत्तम यह होगा कि डेमेट्रियस हम लोगों को मार डाले इस को अपेक्षा कि भूखों मरें इस दशा में कदाचित उसे अबलाओं और बालकों पर दया आजावे"। लोगों ने फाटक खोल दिया और डेमेट्रियस ने अधिकार कर लिया। डेमेट्रियस ने आज्ञा दी कि सम्पूर्ण विवाहित लोग एकत्र किये जावें और करवाल कर में ग्रहण कर के पदाति गण उन्हें घेर लें। इस आज्ञा से नगर भर में चिल्लाना और रोना फैल गया और लोग परस्पर बिदा होने लगे। जब लोग एकत्र हुये तो डेमेट्रियस ने एक उच्चस्थान से लोगों को निर्दयता के लिये धिक्कार दिया। थोड़ी देर तक वह चुप रहा,

उस समय लोग यही अनुमान करते थे कि अब बध की आज्ञा होगी। निदान उस ने कहा कि "मैं तुम्हारे हृदय में विश्वास दिलाना चाहता हूं कि तुम ने मेरे साथ कैसी बुराई की क्योंकि तुम ने किसी शत्रु को सहायता देनी नहीं अस्वीकार की बरन ऐसे मनुष्य को, जो तुम को प्यार करता था और अब भी तुम से स्नेह रखता है और जिस की कामना यह है कि तुम लोगों को क्षमा कर के अपना बदला लेवे और इतने पर भी तुम्हारा मित्र बना रहे। तुम लोग अपने अपने घर को जाओ। जब से तुम यहां हो मेरे पदातियों ने तुम्हारे भवनों में खाद्य वस्तुओं को भर दिया होगा"।

परिश्रम का विभाग।

परिश्रम का विभाग करना साधारणतः यह अर्थ रखता है कि एक मनुष्य केवल एक ही प्रकार का कार्य करे न कि एक मनुष्य कतिपय पृथक २ कर्म अपने ऊपर लेले। यदि हम विचारकरें तो ज्ञात होगा कि इसके कारण से अशिक्षित और सभ्य जाति के बीच एक बहुत बड़ा अंतर उत्पन्न हो गया है एक अशिक्षित मनुष्य अपना सम्पूर्ण कार्य स्वयं करता है वह आपही अपना वैद्य है, आपही सूचीकार है, आपही लोहार है, आपही चर्मकार है, और फल इस का यह होता है कि उसको कुछ भी नहीं आता है वह कई पीढ़ी तक वैसाही नङ्गा भूखा और अव्यवस्थित चित्त रहता है और किसी प्रकार की उन्नति कुछ भी नहीं होती। इस के विरुद्ध सभ्य जातियों को देखो कि उस में भिन्न भिन्न व्यवसाय अथवा कर्म भिन्न भिन्न मनुष्यों को दे दिये हैं। एक मनुष्य जीवन पर्यन्त एक ही कार्य को करता है और दूसरा मनुष्य दूसरे कार्य को। लाभ उस का यह होता है कि अशिक्षितों की अपेक्षा सभ्य लोगों को संपूर्ण सुख और संभोग और आवश्यता की वस्तुयें बहुत सुगमता और अल्प परिश्रम से मिल सकती हैं। परिश्रम के विभाग का केवल एक यही लाभ नहीं है बरन नीचे और भी वर्णन किये जाते हैं। प्रत्येक मनुष्य जिस ने कथित वस्तु हाथ की बनी हुई देखी होगी उस ने

यह भी जाना होगा कि उस वस्तु में भिन्न भिन्न भाग हैं। जैसे छूरी इस में फल है और उस पर चमक है, बेंट है, तिकठी है, और कोल है, और इन सब के मिलने से छूरी बनी है। अब यदि एक मनुष्य फल बनावे दूसरा प्रकाश दे तीसरा तिकठी चौथा कील निर्माण करे तो इस का नाम श्रम का विभाग करना है और उस से लाभ यह है कि समय और गुण नष्ट नहीं होता है। यदि एक मनुष्य अल्पकाल पर्यन्त एक कार्य करे तो उसे उस कार्य का अटकल मिलजायगा और वह उस कार्य को सुगमता और फुर्ती के साथ करना प्रारम्भ करेगा फिर यदि वह उस कार्य को छोड़ कर दूसरा कार्य करना ग्रहण करे तो वह अपने पहले कार्य को कुछ विस्मृत हो जायगा। और वैसी उत्तमता और फुर्ती के साथ सम्पादन न कर सकेगा जिस प्रकार पहले सम्पादन करता था। इस लिये जितना समय उस ने उस उत्तमता और फुर्ती के अर्जन करने में व्यय किया था वह नष्ट हो गया।

जब कतिपय प्रकार के कार्य एकही मनुष्य को सौंपे होंगे तो अवश्य है कि प्रत्येक नवीन कार्य करने के लिये उसे नवीन हथियारों की आवश्यकता हो और प्रत्येक बार इस परिवर्त्तन में एक हथियार को रखेगा दूसरे को उठावेगा और पृथक पृथक प्रकार और ढंग से पकड़ेगा इस प्रकार बहुतसा समय नष्ट जाता है। यदि वह अनवरत एकही कार्य करे तो उसे एक ही हथियार की आवश्यता होगी और वही उपयुक्त होगा। और जो वह हथियार इस प्रकार का हुआ कि उस को व्यवहृत करने से रुपया भी व्यय होता है जैसे लोहार की भट्ठी तो समय के अतिरिक्त रुपये की भी हानि है। क्योंकि यदि लोहार भट्ठी को गरम छोड़ कर दूसरे कार्य में लग गया तो भट्ठी ठंढी हो गयी और जो फिर उसे भट्ठी गरम करने की आवश्यकता हुई तो द्वितीय बार कोयला अथवा लकड़ी व्यय करनी पड़ी।

जब मनुष्य एक कार्य का हो जाता है तो उसे उस कार्य के करने में फुर्ती प्राप्त हो जाती है जो और प्रकार से प्राप्त नहीं हो सकती है। एक नवयुवक मनुष्य जो कभी दैवात कील बनाता है वह दिन भर में

आठ सौ अथवा सहस्र से अधिक नहीं बना सकता है और एक लड़का जिस ने कील के अतिरिक्त दूसरा कार्य कभी नहीं किया है वह दिन भर में फुर्ती के कारण दो सहस्र तीन सौ कीलों से अधिक बना सकता है।

श्रम का विभाग करने से एक लाभ यह भी है कि मनुष्य हथियार और कलों के निर्माण अथवा प्रवर्त्त करने में सहायता मिलती है जिस के कारण से परिश्रम कम होता है। और कार्य अधिक सम्पादन होता है। जब कार्य के कई सुगम भाग हो जाते हैं तो संपूर्ण कार्य अथवा उस के कतिपय भागों के सम्पादन करने के लिये कल का निर्माण करना भी सरल हो जाता है। कल्पना करो कि यदि पूरी कील बनाने के लिये कल निर्माण करना चाहें तो बड़ी कठिनता होगी और अधिक विद्या वो गुण प्रयोजनीय होगा परन्तु जो हम उस की गोलाई को पहला नोक को दूसरा फल को तीसरा भाग ठहरावें तो प्रत्येक भाग के बनाने के लिये कल का निर्माण करना सरल हो जायगा।

प्रत्येक कार्य के भिन्न भिन्न भागों के सम्पादन करने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार की योग्यता की आवश्यकता है। कोई भाग ऐसे हैं जिन में अधिक फुर्ती आवश्यक है। और बहुत दिनों के सीखने के उपरान्त वह प्राप्त होती है दूसरा भाग ऐसा सरल है कि जिस को स्त्रियां और लड़के कतिपय दिवस की शिक्षा में कर सकते हैं किसी भाग के सम्पादन कराने का व्यय एक अथवा दो रुपया होता है किसी का केवल कई आने पैसे होते हैं। अब यदि सब काम एकही मनुष्य से लिया जाय तो जिस भाग का व्यय अल्प है उस के लिये भी अधिक व्यय करना होगा। और इस प्रकार व्यर्थ रुपया व्यय होगा। जो कार्य जिस मनुष्य के योग्य है उस को वह कार्य देने से और जिस कार्य की जितनी लागत है उतनी ठीक लागत देदेने से अल्प व्यय होता है और इस लिये लाभ अधिक होता है। परिश्रम का विभाग करने से केवल हस्त-कर्म (दस्तकारी) ही में लाभ नहीं है वरन मनुष्य अपने विचारों का दूसरी ओर से रोक कर केवल विद्या, उच्च श्रेणी के गुण, साहित्य की पूर्ति, और दूसरी उपयोगी बातों की ओर प्रवृत्त करें तो बहुत उन्नति

हो सकती है। देखो न्यूटन, लाक, प्रभृति जो बड़े बुद्धिमान हो गये हैं यदि उन के विचार और चिन्तना में विघ्न डाला जाता तो जो उपयोगी बातें संसार भर में उन को बुद्धि द्वारा ज्ञात हुई हैं वह संपूर्ण नष्ट हो जातीं। इन लोगों को भी अपर मनुष्यों के समान भोजनाच्छादन की आवश्यकता थी। यदि वह लोग निजपाक अपने हाथ से करते और आप ही अपना वस्त्र सोते तो उन को बहुत ही कम अवकाश मिलता और बहुत कम समय उपयोगी बातों के विचारने और सृजन करने का मिलता और इस प्रकार हम लोग उन बातों के जानने से मुग्ध (महरूम) रह जाते।

— —

वेतन (मज़दूरी)।

किसी श्रमजीवी को अधिक वेतन मिलता है, और किसी को कम जैसे बढ़ई का वेतन हरवाहे से अधिक होता है और इसी प्रकार घड़ीकार इन दोनों से अधिक पाता है। यदि विचार किया जाय तो यह बात भी नहीं है कि जिस का वेतन अधिक है वह अधिक श्रम करता है क्योंकि घड़ी निर्मेता जिस का वेतन अधिक है उस को बढ़ई और हरवाहे दोनों से कम परिश्रम करना पड़ता है। अब तुम को ज्ञात हुआ होगा कि वेतन का भाव श्रम को कठिनता और कोमलता पर निर्भर नहीं है वरन कार्य के मूल्य पर अवलम्बित है। परन्तु अब यह निर्धारण हो सकता है कि कार्य का मूल्य किस पर निर्भर है सर्व प्रकार के कार्य का मूल्य अपर वस्तु के मूल्य समान है जो वस्तु जितना कम होती है अर्थात् जिस वस्तु के प्राप्त करने में जितनी अधिक कठिनता अभिमुख होती है उतना ही उस का मूल्य भी अधिक होता है। यदि हम को एक सेर तांबे के प्राप्त करने में उसे अधिक कठिनता हो जितनी एक सेर सोने के प्राप्त करने में होती है तो निस्सन्देह तांबा सोने की अपेक्षा अधिक मूल्यवान समझा जायगा परन्तु क्यों घड़ी निर्मेता कम उपलब्ध होते हैं बढ़ई अथवा हरवाहे की अपेक्षा। दूसरे शब्दों में इ प्रश्न यों हो सकता है कि क्यों घडी बनाना सीखने में अधिक कठिनता

है हरवाहे अथवा बढ़ई के कार्य की अपेक्षा ? मुख्य कारण इस का यह है कि घड़ी बनाना सीखने में बहुत अधिक रुपया और समय व्यय होता है। शिक्षक की सेवा करनी पड़ती है। वर्षों मनुष्य एड़ियां रगड़ता है तब कहीं जा कर घड़ीनिर्मेता होता है। और हरवाहे अथवा बढ़ई के काम के सीखने में बहुत ही अल्प व्यय और कठिनता होती है। घड़ीनिर्मेता को जितना वेतन एक सूची के बनाने में घड़ी भर में मिलेगा उतना वेतन हरवाहे को चार दिन तक भी धूप में काम करने से नहीं मिल सकता। इस का अभिप्राय यह नहीं है कि जो अधिक रुपया व्यय करे वह अधिक रुपया पावे। बरन यह तात्पर्य्य है कि घड़ी बनाना सीखने में हरवाहे की अपेक्षा अधिक रुपया व्यय होता है, अधिक समय लगता है, जिससे कि कठिनता होती है इसलिये घड़ीनिर्मेता हरवाहों की अपेक्षा कम होते हैं अतएव जब कम हुये तो मूल्य अधिक होता है अर्थात् उन को वेतन भी अधिक दिया जाता है। इस से प्रगट है कि जो वस्तु जितनी कम मिलेगी उतनी ही बहुमूल्य समझी जावेगी।

खेद अथवा शोक।

न जानें किस लिये लोग बहुधा इस संसार में यह अनुमान करते हैं कि जो मनुष्य अधिकतर खेदित अथवा शोकित रहता है उस में अवश्य कुछ न कुछ उत्तम बात होती है। और कुछ नहीं तो बूझ और भलाई का तो अवश्यही ऐसे मनुष्य में पाया जाना अनुमान कर लेते हैं, यद्यपि कि यह अयोग्य अनुमान है। इटली के लोगों का तो यह विश्वास है कि रोती आकृति के लोग भयान्वित और दुष्टप्रकृति होते हैं और ठीक भी है। स्टोइक्स भिषक भी ऐसा मानते थे कि खेद अथवा शोक, कादरता, सुस्ती, निर्बलता, और नीचपन का प्रगट करनेवाला है। एक उपाख्यान है कि जब ईरान के महाराजाधिराज कैम्बासिस ने मिस्र के महाराज सेमेनिटस को पराजीत कर के धर लिया तब उस के सन्मुख उस की लड़की को नग्न करवा कर और जलपूरित डोल सिर पर रखवा

कर निकाला। इस बात से जितने उस के साथी थे सब को बड़ाही खेद अथवा शोक हुआ और फूट फूट कर रोने लगे। पर यह महाराज हिच से मिच न हुआ एक अक्षर शोक का इस के मुख से न निकला और प्रस्तरनिर्मित प्रतिमा समान नीची आंखें किये हुये बैठा रहा। थोड़ी देर के उपरांत उस का पुत्र फांसी पाने के लिये उस के सामने हो कर लाया गया तब भी वह न डिगा। तीसरी बार जब इस को एक दासी बाल पकड़ कर घसीटी गयी तो इस से न रहा गया चटपट रोदिया। बाल खसोटने लगा, छाती कूटने लगा और प्रत्येक प्रकार से बड़ाही शोक प्रगट करने लगा। बहुत से मनुष्यों ने यह सोचा कि शोक का चषक (प्याला) तो इस का पहलेही भर गया था अतएव थोड़ा सा और पड़ने से उमड़ उठा किन्तु जब कैम्बासिस ने सेमेनिटस से पूछा कि यह क्या बात है कि तू ने निजकन्या के अति गुरु अपमान पर न रुदन किया, पुत्र की मृत्यु पर शोक न दिखलाया परन्तु एक दासी की आपत्ति पर तू ने इतना शोक प्रकाश किया। तो इस ने उत्तर दिया कि यह अंतिम संताप तो आंसुओं से प्रगट हो सकता था किन्तु पहले दो संताप किसी प्रकार से भी प्रगट नहीं हो सकते थे।

कदाचित ऐसाही कल्पित विचार उस यूनानी चित्रकार के हृदय में होगा कि जिस ने इफ़िगिनिया के बलिप्रदान के समय उस के पिता के मुख पर कपड़ा चित्र में डाल दिया। कल्पना करो कि वह चाहे जितना प्रयत्न करता पर किसी और प्रकार से उस का शोक कथमपि प्रगट नहीं कर सकता था। इसी प्रकार से प्राचीन कवियों ने भी गढ़ा है कि जब निओबी के सात पुत्र मर गये तो वह पत्थर की हो गयी। अभिप्राय यह है कि वह उन के शोक में पत्थर के समान हो गयी और उस को किसी बात की सुध बुध न रही।

क्रोध सहन करना।

बहुत से गुण ऐसे हैं जिन का प्राप्त करना संसार में सांसारिक बर्ताव के लिये अत्यन्त आवश्यक है। जो मनुष्य ऐसे गुणों को अर्जन

करता है और तदनुकूल आचरण करता है वही उन के अपरमित लाभों से लाभ उठाता है। लोग उस से अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं और प्रत्येक कार्य में वह मनुष्य लब्धकाम होता और थोड़े ही समय में उन्नति लाभ करता है। युवावस्था में लोग जवानी के मद में मत्त रहते और धृष्टता और उपद्रव से परिपूर्ण होते हैं इसी कारण से वह प्राय: ऐसे गुणों को व्यर्थ और निरर्थ समझ कर उन के अर्जन करने में त्रुटि करते और मन को यों बोध देते हैं कि कौन उन्हें अर्जन करे क्यों हम निष्प्रयोजन इतनी आपत्ति और क्लेश स्वीकार करें। परन्तु जब युवावस्था का प्रस्थान होता है और वृद्धता का शुभागमन होता है उस समय संसार को परीक्षाओं से उन गुणों का सन्मान होता है परन्तु फिर क्या होता है शोक करने के अतिरिक्त, क्योंकि जो उन के अर्जन करने का समय था सो हाथ से निकल गया। तात्पर्य्य इन सब बातों का यह है कि क्रोध के सहने अथवा क्षमा करने का स्वभाव डालो और प्रसन्न बदन रहना ग्रहण करो। इस लिये कि तुम्हारी बातचीत, परिचालना, स्थिरता, मुख और आकृति से तुमारा क्रोध, हर्ष अथवा कोई और बात जो तुमारे मन में हो और जिसे तुम गुप्त रखना चाहते हो प्रगट न होने पावे। जो लोग हम से अधिक योग्य और सहनशील हैं उन को हमारे भेद खुल जाने के कारण से हम पर बड़ा अधिकार प्राप्त हो जाता है न केवल बड़े बड़े कामों में वरन छोटे छोटे विषय में भी जिन का संयोग शतश: बार जीवन में पड़ता है। ऐसा मनुष्य जो बुरी बात सुन कर मारे क्रोध के आपे से बाहर हो जाता है और गिरगिट समान नीला पीला होने लगता है अथवा ऐसा मनुष्य जो उत्तम और चित्ताकर्षक बात का समाचार पाकर मारे हर्ष के वस्त्र में नहीं समाता और अति प्रसन्न हो जाता है वह सदा छली, कपटी, चलाक और चापलूस मनुष्यों के वश में रहता है क्योंकि वह लोग किसी न किसी प्रकार से किसी न किसी युक्ति से उस को क्रोध दिला कर अथवा चापलूसी की बातों से प्रसन्न कर के ऐसा बनाते हैं कि वह बिना समझे बूझे जो जी में आता है बक बकाने लगता है और क्रोध अथवा हर्ष के कारण

से उन बातों को मुख से निकालता है अथवा उन का प्रगटाव मुख से करता है जिन का प्रच्छन्न रखना उसे उचित है अथवा था। इस युक्ति से छली मनुष्यों को अपना अर्थ बहुत सुगमता से प्राप्त हो जाता है अर्थात् वह उस मनुष्य के आंतरिक भेद से अभिज्ञ हो जाते हैं और इस के कारण से भांति भांति के लाभ उठाते हैं। हृदय एक कोष भेद का है जिस को कुंजी मनुष्य को स्वयं अपने हाथ में रखनी चाहिये क्योंकि भेद खुलने में प्रायः प्राणबाधा की आशंका हो जाती है। यदि अचा-नक क्रोध आ जाय तो इस से बचने के लिये कम से कम इस विषय का प्रण करना अवश्य है कि कोई शब्द जिह्वा पर न आवे जब तक क्रोध जाता न रहे क्योंकि यह एक बड़ी भारी वीरता और उपयोगी बात है यथा—

ताहि न कबहुं वीर बुध कहहीं। गज प्रमत्त सो लरन जो चहहीं॥
हां है वीर वास्तव सोई। क्रोध में न अनुचित कह जोई॥

क्रोध ऐसी आपदा है जिस में छोटे बड़े सब कुछ न कुछ फंसे ही मिलते हैं और कदाचित ही कश्चित व्यक्ति ऐसा हुआ होगा जो इस से बचा हो क्या आर्य्यों के पुराणों में क्या और जातियों की पुस्तकों में कठिनता से किसी ऐसे सद्व्यक्ति का अनुसंधान मिलेगा जिस ने क्रोध को जीता हो। आर्य्यों अर्थात् हिन्दुओं का सर्वोत्कृष्ट योगधर्म यही है कि मनुष्य काम क्रोध लोभ मोह को स्ववश करे। परन्तु थोड़ा विचार करने से ज्ञात हो जायगा कि इन सब से बलवान, अजित क्रोध ही है जिस से बचने के लिये अवश्य है कि मनुष्य पहले शेष तीनों से बचे क्योंकि जब हम को किसी वस्तु के मिलने और न मिलने की चिन्ता नहीं अथवा हम अपने लाभ को लाभ व हानिको हानि नहीं समझते तो हम क्रोध से सर्वथा बच सकते हैं।

इस में कोई सन्देह नहीं कि यह बड़ी कठिन बात है कि मनुष्य सर्वथा अथवा पूर्णतया क्रोध रहित हो जाय। वरन सांसारिक कार्यों में किसी समय बिना क्रोध के काम भी नहीं चलता। संसार में क्रोध से बचना उतना ही कठिन ज्ञात होता है जितना शोक से। अर्थात्

यदि यह संभव हो कि मनुष्य शरीर ग्रहण कर के हमारे सन्निकट शोक न आवे तो यह भी संभव है कि हम क्रोध से बचें परंतु क्रोध को एक मित होनी चाहिये जिस से वह अधिक न बढ़ सके और सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि हम क्रोध के वश में न होजायं। कोई वस्तु हो एक समता (एतदाल) का अंश रखती है। विष भी यदि मित से कम है तो प्राणहारक नहीं हो सकता और मिठाई ही के बहुत अधिक खाने से मरणकाल समीप आजाता है।

जैसा ऊपर कथन किया गया मनुष्य को चाहिये कि क्रोध के वश में न होजावे वरन उस को अपने अधिकार में रखे। इस के लिये अवश्य है कि सदा अपने क्रोध को कमही करने का उद्योग किया जावे। उस को यही युक्ति हो सकती है कि क्रोध आतेही चित्त में किसी और बात का ध्यान कर लेना चाहिये। टोटके के अतिरिक्त दो चार युक्तियां भी मतिमानों ने वर्णन की हैं जैसे क्रोध आतेही अपनी भाषा की वर्णमाला के सम्पूर्ण अक्षरों को कह जाना। और निस्सन्देह यह युक्ति बहुत उपयोगी हो सकती है। क्योंकि जबतक हम सम्पूर्ण अक्षर कहेंगे हमारा क्रोध शांत हो जायगा। मुख्य अभिप्राय तो यही है कि किसी भांति क्रोध आने और उस के उद्वेग में कल्पित कार्य कर देने के बीच चित्त को किसी दूसरी ओर फेरना चाहिये।

एक महाराज को बड़ा क्रोध आया करता था और वह आप अपनी इस प्रकृति से लज्जित रहता था। एक महात्मा से उस ने इस भेद को कहा और उस से कोई युक्ति पूंछी उस ने तीन पत्र कुछ लिख कर दिये और कहा कि इन्हें किसी दास को सौंप दीजिये और आज्ञा दे दीजिये कि जब आप को क्रोधित देखे अवश्य क्रमशः आप को देता जावे और आप भी दृढ़ प्रतिज्ञा कर लीजिये कि प्रथम इन को पढ़ कर फिर कल्पित कार्य कीजिये। राजा ने ऐसा ही किया और थोड़े दिनों में नृपति की क्रोधवाली प्रकृति बहुत छूट गई और वह उस महात्मा का अत्यंत बाधितहुआ।

इस के अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि

क्रोध शमन होने के उपरांत हृदय में भली भांति विचार किया जाय और मनुष्य शोक और अपने को धिक्कारित करे और यह सोचे कि क्रोध क्यों उत्पन्न हुआ और क्यों मैं इतना आपे में न रहा।

जो मनुष्य क्रोध के वश में हो जाता है उस से कई बातें ऐसी हो जाती हैं जिन से उस को बड़ी हानि होती है। उन में मुख्य ये हैं १ व्यर्थ बकना २ उन गुप्त भेदों का प्रकाश करना जिन को प्रच्छन्न रखना ही उचित था ३ कल्पित कार्य झटपट कर बैठना। इस के उपरांत तो दूसरी और तीसरी बातें अधिक हानिकर पहले की अपेक्षा ज्ञात होती हैं परंतु पहली से जो हानियां होती हैं बहुत बड़ी हैं। दूसरी और तीसरी बातों के फल तो कुछ समय में भी उत्पादन होते हैं परंतु पहली के बुरे फल तत्काल ही प्रगट होते हैं। इस से क्रोधाग्नि उभय पक्ष से अति शीघ्र भड़क उठती है और जो फल मारपीट लात मूंका की भांति के प्राप्त होते हैं सब पर प्रगट हैं इस के अतिरिक्त क्रोध के प्रज्वलित होने से शेष दो बातें भी हो सकती हैं। व्यर्थ बकने से हमारा अभिप्राय वैसी बातें करने से है जो बैरी के सन्मुख लोग क्रोध के प्रज्वलित होने से कहते हैं जैसे हम तुझे क्या समझते हैं, और तेरी क्या शक्ति है, हम देख लेंगे, तेरा लहू पीकर छोड़ेंगे। यदि तुझ से बदला न लिया तो अपने बाप का नहीं। इत्यादि।

पुरुष को उचित है कि ऐसी बातों से बचे जो वह है सो है और जैसा शत्रु है वह भी वैसा ही रहेगा हां हम को यदि बदला ही लेना है तो यही समझ लें, अनुचित बातों से क्या लाभ हम तो बदला लेहींगे और यदि नहीं तो धन्य! धन्य!! परन्तु हम ने जो इतना वृथा प्रलाप किया इस का क्या फल हुआ, शत्रु भी अन्त को यही सोचेगा कि जो बादल अधिक गरजता है वह क्या बरसेगा। हां क्रोध की अवस्था में इतना अवश्य हुआ कि बातोंही बात मारपीट हो गई लोगों में उपहास हुआ और अन्त को संतोष कर के बैठ रहे। क्रोध में जो शब्द बैरी के सन्मुख मुख से निकलते हैं सम्पूर्ण पुरुषार्थ अभिमान और अपनी ही बीरता से भरे होते हैं और धृष्टता प्रगट करते हैं। यह क्रोधाग्नि में और

भी ईंधन छोड़ते हैं और युद्ध के लिये ऐसाही उत्तेजित करते हैं जैसा रणाजिर में रणवाद्यों का राग, सैनकों का साहसवर्द्धक समाधान, और कड़खैतों की कड़कती हुई बोली। उन का गुण क्रोधानल प्रज्वलित करने में वैसाही होता है जैसा मृत मनुष्य सम्बन्धी चरित्रों को स्मरण कर कर के रुदन का शोक अधिक करने में। यह बात सर्वदा देखी जाती है कि स्त्रियां मृतकों को नामों से पुकार पुकार और उस की प्रीति और सत्स्वभाव को ध्यान कर कर के रुदन किया करती हैं और उन के शोक का प्रगट करना मृतकों के शोक प्रगट करने से अधिक होता है। यही दशा क्रोध की भी है कि वृथा डींग मारने और शत्रु की लघुता की दृष्टि से देखने से बढ़ता जाता है।

हम लिख आये हैं कि क्रोध में जिह्वा को स्ववश रखना अर्थात् क्रोध के वश में न हो जाना (क्योंकि क्रोध शांत करने और उस की हानियों से बचने के लिये जिह्वा को वश में रखना अवश्य है) सच्ची वीरता है। वीरता दोनों अर्थ में ली जा सकती है चाहे उस से भलाई और योग्यता समझी जाय अथवा शारीरिक बल और शक्ति। पहले अर्थ में तो स्पष्ट प्रगट है परन्तु दूसरे अर्थ में कुछ पृथक्तया वर्णन की आवश्यकता ज्ञात होती है। यह बात सर्वत्र देखी गई है कि जो लोग निर्बल अथवा कोमल प्रकृति के होते हैं उन्हें विशेष क्रोध आ जाता है, वृद्ध, स्त्रियां, रोगी, लड़के, बहुधा क्रोधी और चिड़चिड़े होते हैं। परन्तु बलवान मनुष्य क्रोध को अधिक सम्हाल सकता है। जितना ही शीघ्र हानि पहुंचती रहती है क्रोध उत्पन्न होने के कारण प्रस्तुत होते जाते हैं इसी से निर्बल मनुष्यों को क्रोध अधिक उत्पन्न हुआ करता है।

भिषक सोक्रात में और सब उत्तमोत्तम बातों के अतिरिक्त यह महद्गुण था कि वह क्रोध को भली भांति सहन कर सकता था। उस ने अपने मित्रों को आज्ञा दे रखी थी कि जब मुझे क्रोधित देखो टोक दो। एकबार ऐसा हुआ कि सुक्रात को अपने एक दास पर अत्यन्त क्रोध आया और उस से कहा क्या करूं यदि इस समय में क्रोधित न होता तो तुझ को निस्सन्देह दंड देता। दास ने इस के उत्तर में बड़े वेग से

एक घूंसा सुक़रात के सिर पर मारा। आप मुसकिरा कर कहने लगे कि यह मेरी मंद भाग्यता थी जो पहले से मुझे यह न ज्ञात हुआ था कि आज मैं ऐसे बहु मूल्य आपीड़ सुशोभित किया जाऊंगा।

एक दिन सुक़रात अपने मित्रों के साथ राजमार्ग पर जाता था कि एक ऐश्वर्यवान से चार आंखें हुईं सुक़रात ने झुककर जुहार किया धनिक ने प्रणाम का कुछ उत्तर न दिया। भिषक के मित्रों को धनिक की यह बात अत्यन्त असह्य हुई। सुक़रात ने नम्रता के साथ अपने मित्रों से कहा कि महाशयो! मैं आप से पूछता हूं कि यदि आप राजमार्ग पर किसी ऐसे मनुष्य को देखते जो किसी शारीरिक रुजग्रस्त होता तो मैं अनुमान करता हूं कि कदाचित आप उस पर कदापि रुष्ट न होते फिर क्या कारण है जो आप ऐसे मनुष्य से रुष्ट होते हैं जो मानसिक रोग अर्थात् अभिमान इत्यादि में लिप्त है आप को रुष्ट होने के परिवर्त्त में दया करनी समुचित है।

एकबार सुक़रात की सहधर्मिणी जो संसार भर की कर्कशा और दुश्चित्ता थी उस को देखतेही सहस्रों कटुवाक्यों को सुनाने लगी और मारे क्रोध के केशों को खोल कर चुड़ैल के समान दौड़ी। भिषक के सकल वस्त्र फाड़ डालें सुक़रात कुछ न बोला चुपचाप द्वार के समीप बैठ गया परन्तु उस दुष्टा को इस पर भी चैन न आया कोलाहल करती और चिल्लाती हुई कोठे पर चढ़ गई और खिड़की में से धोवन और मैला पानी सुक़रात के सिर पर जो नीचे बैठा हुआ था फेंक दिया। भिषक ने कहा सच है जो बादल गरजता है वह कुछ बरसता भी अवश्य है।

—o—

अनुचित लज्या।

प्रायः जब कश्चित कुलीन अथवा विद्वान किसी नववयस्क से कुछ प्रश्न करता है तो इस पर आतंक (रोब) छा जाता है। प्रश्न का

उचित उत्तर देने में लज्जित होता है, जिह्वा लटपटाने लगती है। लोग उस के इस अयोग्य और निर्मूल भय पर हंसते हैं और समझते हैं कि इसे संगति भलेमानसों और कुलीनों की नहीं रही। ऐसी अयोग्य लज्या और आवश्यक लज्या में बहुत बड़ा अन्तर है। तुम को निस्सन्देह लज्यावान होना चाहिये क्योंकि वह प्रशंसनीय है और लोग उसे अच्छा जानते हैं। किन्तु अयोग्य लज्या एक अवगुण पूरित बात है और लोग प्रशंसा करने के परिवर्त्त में उस पर हंसते हैं। तुम को चाहिये कि तुम अच्छे लोगों के साथ में बैठा उठा करो, उन से सभ्यता और सन्मान पूर्वक सम्भाषण करो और यत्किञ्चित भी अपने अन्तष्करण में लज्जित और व्यग्र न हो। यदि तुम इस का आचरण न करोगे तो सदा अज्ञ रहोगे और लोग तुम को सदा तुच्छ समझेंगे। कथित व्यक्ति जो वस्तुत: शंशयात्मा भीरु और लज्यालु हैं चाहे वह कैसाही योग्य क्यों न हो संसार में विख्यात नहीं हो सकता और न किसी प्रकार की उन्नति कर सकता है। उस की अनाशा और भय उसको सुस्त और अकर्मण्य कर देती है और अच्छे कार्य करने और यश लाभ करने की निषेधक होती है; उस की अयोग्य लज्या उस को सदा अज्ञ बनाये रहती है। आगे पैर नहीं बढ़ाने देगी, उन्नति के द्वारों को अवरोध कर देती है। योग्यता को मिट्टी में मिला देती है। जो लोग बुद्धिमान और सांसारिक नियमों से अभिज्ञ हैं वह अपने प्रयोजन को इच्छानुकूल प्राप्त करते हैं। महत्व और प्रतिष्ठा उत्पादन करते हैं। अपने सत्कार और सभ्यता के कारण लोगों को प्रसन्न रखते हैं। अपने उत्तमालाप और मिष्टभाषण के कारण से दूसरों के चित्तों को हस्तगत कर लेते हैं। लज्यालु और शंसयात्मा पुरुषों से प्रत्येक विषय में अग्रगण्य बने रहते हैं। केवल दो बातों से तुम को लजाना चाहिये पहले बुराई और दूसरे मूर्खता। जब तुम इन दोनों अवगुणों से रहित हो तो तुम उत्तमोत्तम संसर्ग अथवा समाज में निर्भय और निर्द्वन्द युक्त हो कर लोगों से वार्तालाप करने में कदापि लज्या न करो और न मन में डरो कि वह तुम पर हंसेंगे। लज्या ही के कारण नववयस्क मनुष्य कुलीनों के समाज में

जाने से बचाव करते हैं और घबरा कर नीचों और अपने से लघुतर लोगों की संगति ग्रहण करते हैं किसी समय ऐसा होता है कि जब कथित लज्जावान पुरुष अवश होकर किसी उत्तम समाज में जाता भी है तो उस को लज्जा के कारण बड़ा क्लेश और असुविधा होती है और वह घबरा कर अपनी तीव्रता अथवा मतिमानता दिखलाने के लिये निर्लज्जता (गुस्ताख़ी) पर कटिबद्ध होता है और हास्य करना ग्रहण कर लेता है इस लिये कि सुख प्राप्त हो। किन्तु स्मरण रखो कि निर्लज्जता अथवा हास्य करना और बुरी बात है। इस से जहां तक संभव हो बचाव करो क्योंकि लोग निर्लज्ज (गुस्ताख़) अथवा हंसी करनेवाले मनुष्य से बहुत अप्रसन्न होते हैं और उस से अत्यन्त घृणा करते हैं। जब कभी कोई लज्जालु पुरुष दैवात कुलीनों और भलेमानसों के समाज में जा पहुँचता है तो उस समय उस का स्वरूप और दशा दर्शनीय होती है। लज्जा के मारे उस के मुख से वाणी नहीं निकलती। व्यग्रता के कारण प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता। मुख पर फ़ीकापन छा जाता है। हाथ एक स्थान पर चैन से नहीं रहता। वार्त्तालाप करते समय कभी ग्रीवा खुजलाता है कभी नखों को देखता है। कभी हाथ मलता है, कभी कर पग की मैल छुड़ाने लगता है परन्तु वह मनुष्य जो कुलीन है और अच्छी संगत किये हुये है जब ऐसे समाज में जाता है कभी नहीं लज्जित होता है और न व्यग्र होता है वरन वह संपूर्ण कर्म प्रतिष्ठा, मान, सन्मान के जो उचित करता है। प्रत्येक व्यक्ति की पदवी, और गौरव के अनुसार अत्यन्त सावधानी से परिभाषण करता है और इस प्रकार से सब को प्रसन्न रखता और सुयश संचय करता है। नववयस्कों के लिये अवश्य है कि वह उत्तम संगति ग्रहण करें और ऐसे लोगों से प्रायः समालाप करें जो उन से प्रतिष्ठा अथच गौरव और विद्या में अधिक हों। सुशिक्षित मनुष्य अपने से लघु श्रेणी के मनुष्यों से बिना मद और अभिमान के आचरण करता है और अपने से श्रेष्ठ पदस्थ के साथ सन्मान और सत्कार से। वह अपनी नीतिज्ञता, सरस्वभावता, मतिमानता, और चातुर्य्य के कारण से प्रत्येक मनुष्य को प्रसन्न रखता है। सभों के चित्तों

में निज प्रेम का बीजारोपण करता है। जो मनुष्य चालचलन कुलीनों के समान रखता है चाहे वह विद्या में कम क्यों न हो परन्तु लोग उस का आदर और गौरव विशेष करते हैं उस मनुष्य की अपेक्षा जो विद्या में अधिक है किन्तु सांसारिक नियम और परिपाटी से निपट अनभिज्ञ है।

मित्रता।

नववयस्कलोग प्रायः ऐसे स्वच्छ अंतष्करण और सीधे सादे होते हैं कि प्रवीण और चतुर लोग उन को अपना खिलौना बना लेते हैं और भली भांति धोखा देते और छल करते हैं। जहां किसी दुष्टात्मा ने झूठ मूठ अपनी मित्रता प्रगट की वह तत्काल उस के कहने को सत्य समझते हैं और हृदय में यह विचार कर के कि यह मनुष्य हमारा परम मित्र है उस पर अपना सम्पूर्ण भेद प्रगट कर देते और अपने सम्पूर्ण मर्मों से उसे अभिज्ञ कर देते हैं। अंत में फल इस अज्ञता का खेद, शोक, विनाश, और बिगाड़ होता है। ऐसे कपटी मित्रों से सदा सावधान और चैतन्य रहो उन से बहुत सज्जनता और नम्रता से बर्ताव रखो परन्तु उन पर विश्वास न करो उन का सत्कार और आमंत्रण भली भांति करो परंतु उन से कथित भेद न वर्णन करो। यह कदापि न समझो कि लोग पहले ही समागम में अथवा थोड़ी ही सी जान पहचान के उपरांत मित्र हो जाते हैं, वास्तविक मित्रता बहुत दिनों में उत्पन्न होती है और कभी त्वरित नहीं होती जब तक कि दोनों मनुष्य एक ही स्वभाव एक ही प्रकृति एक ही ढंग और एक ही योग्यता के न हों। दुराचारियों और कौतुकानुरागियों इत्यादि में अति शीघ्र मित्रता उत्पन्न हो जाती है एक दूसरे को रुपया ऋण देने, प्रत्येक प्रकार की सहायता करने और मित्रों की ओर से लड़ने भिड़ने के लिये दत्त-चित्त रहते हैं। प्रयोजन यह कि प्रत्येक असत्कर्म के सहयोगी होते हैं परस्पर भली भांति स्नेह की बातें और भेद वर्णित होते हैं निश्शंक मद पान होता है। वाह २ ऐसी मित्रता का क्या कहना जिस का कि मिश्र मदिरा से बनाया जावे और जिस में लवण के स्थान पर गालियों

का रस (शोरबा) हो। सच पूछो तो यह एक समाज धर्मशास्त्र के विरुद्ध है । न्यायाधीश (मजिस्ट्रेट) को इन का नेत्रदंड (चश्म-नुमाई) करना चाहिये क्योंकि यह लोग दूसरे के चाल और चलन के नष्ट करनेवाले हैं । निदान थोड़े दिनों तक भली भांति चाव रहता है कतिपय दिवसोपरांत जब बिगड़ती है तो एक दूसरे को कभी स्मरण भी नहीं करता। स्मरण करना तो दूर रहे वरन अपमानित और नष्ट करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं और प्राथमिक अज्ञता, उदंडता और भेदवर्णन करने पर हंसते हैं। जो अंतर कि मित्रता और समागम के मध्य है उसे सदास्मरण रखो । मित्र का गौरव समागमी से कहीं बढ़ कर होता है। कभी किसी समागमी को मित्र मत समझो और उस से आंतरिक भेद अथच गोपनीय मर्म न वर्णन करो क्योंकि समागमी प्रायः पहले अच्छे और उत्तम ज्ञात होते हैं किन्तु अंत में बुरे अयोग्य और छली निकल जाते और हानि पहुंचाने के उद्योगी होते हैं। इस बात का अवश्य ध्यान रखो कि मित्रता सदा सत्पुरुषों से उत्पन्न करो क्योंकि यदि तुम्हारे मित्र अच्छे और सद्व्यक्ति होंगे तो लोग तुम को भी वैसा ही समझेंगे और जो वह बुरे होंगे तो तुम को भी बुरा अनुमान करेंगे चाहे तुम वास्तव में अच्छे हो। यह नियम सर्वथा ठीक है कि जब लोगों को किसी का चाल और चलन जानना अभिप्रेत होता है तो वह पहले उस के मित्रों के ढंग और चलन पर दृष्टि करते हैं और उन्हीं के ढंगों के अवलोकन से उन को उस मनुष्य का चाल व चलन ज्ञात हो जाता है कि वह अच्छा है अथवा बुरा, जैसा कि अंगरेज़ी में एक कहावत है जिस का तात्पर्य्य यह है कि "तुम मुझ से अपने सहवासियों का भेद बयान करो तो फिर मैं बतला दूंगा कि तुम कैसे और कौन हो" और विवक लुकमान का भी यह कथन है कि "मनुष्य की परीक्षा उस के साथियों से कर"। यदि तुम चतुराई और प्रवीणता से दुराचारियों मूर्खों और नीचों की संगति तज दोगे तो वह लोग बलात तुम से रिपुता न करेंगे और न निष्प्रयोजन तुम से अप्रसन्न होंगे क्योंकि संसार में उन के समूह के लोग अधिक हैं तुम्हारे एक

के निकल जाने से उन को क्या हानि होगी वह तुमारे स्थान पर किसी दूसरे को अपना मित्र बना लेंगे। हम को चाहिये कि सदा ऐसे मनुष्यों से दूर रहें न उन से मित्रता और न उन से परस्पर का हेलमेल रखें और न उन से उपद्रव कय करें। अंतष्करण में तुम ऐसे मनुष्यों को बुराइयों और अज्ञताओं के शत्रु रहो परन्तु प्रगट में उन से कुछ सम्बन्ध न रखो क्योंकि ऐसे लोगों की मित्रता जिस प्रकार अस्पृहणीय है उसी प्रकार शत्रुता भी अकरणीय है। परमेश्वर उन की मित्रता और शत्रुता दोनों से बचावे। मन में सब से खिंचे रूके और डरते रहो इस लिये कि कोई धोखा न उठाओ परन्तु प्रगट में विकसितबदन और सत्स्वभाव से बर्ताव करो इस लिये कि लोग रुष्ट न होने पावें। प्राय: लोग ऐसी तनक तनक सी बात पर रुकते और खिंचते हैं कि धुन्ने प्रख्यात हो जाते हैं और लोग उन से घृणा करने लगते हैं। कोई अपनी अल्पज्ञता के कारण ऐसा स्वच्छ हृदयत्व अर्थात् सरलता ग्रहण करते हैं कि प्रत्येक मनुष्य से अपना समस्त भेदवर्णन करते फिरते हैं और अपना कथित मर्म किसी से प्रच्छन्न नहीं रखते परन्तु कतिपय मनुष्य ऐसे हैं जो इन दोनों दशाओं के मध्य से परिचित हो गये हैं वही अच्छे हैं और वही लाभ उठाते हैं। अन्तिम श्रेणी का रुका रुका रहना अथवा अन्तिम श्रेणी का स्वच्छ हृदय होना दोनों बातें अच्छी नहीं हैं।

—०—

परिच्छद।

जहां और सब बातें लोगों के प्रसन्न रखने के लिये अवश्य हैं उन में से एक परिच्छद भी है। इसलिये इस का भी ध्यान रखना उचित है कि किस ढंग को लोग उत्तम समझते हैं और किस को नहीं। यह रीति है कि हम लोगों की दृष्टि छूटतेही प्रत्येक व्यक्ति के परिच्छद पर पड़ती है। समागम होने और समालाप करने के पहले ही हम को ढंग और चाल देखकर उस मनुष्य के विषय में भला अथवा बुरा अनुमान बंधने

लगता है। पहलेही से कुछ कुछ ज्ञात हो जाता है कि उस मनुष्य की चाल व चलन उत्तम है अथवा बुरा। वह अज्ञ है अथवा मतिमान। यदि परिच्छद में बनावट अथवा उद्दंडता (शेख़ी) पाई गई तो लोग उस पर अज्ञ होने का अनुमान करते हैं। मतिमान लोग ऐसा परिच्छद धारण करने से बचते हैं जिस का ढंग सब से निराला और अनोखा हो और जिस के पहनने से मद अथवा उद्दंडता का अनुमान हो। वह केवल ऐसे वस्त्र पहनते हैं जो स्वच्छ और निर्मल हों इसलिये कि स्वास्थ्य में विघ्न न उपस्थित हो। परन्तु मदान्वित और उद्दंड मनुष्य अपनी उपयोगिता के अभिप्राय से नहीं वरन लोगों के दिखाने के लिये अच्छे २ चमकीले वस्त्र से शरीर को सज्जित करता और निरर्थ अपना रुपया व्यय करता है। प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि परिच्छद और चाल ढाल के विषय में उस स्थान के कुलीनों भलेमानसों और मतिमानों का अनुकरण करे जहां वह रहता है। यदि वह उन से अधिक परिच्छद पहनेगा तो लोग उसे उद्दंड और अभिमानी समझेंगे और यदि उन में घटी करेगा तो भी लोग उसे अल्पज्ञ और मूढ़ समझेंगे। प्राय: नवजयस्क सुस्ती और अचैतन्यता के कारण से इतने कम वस्त्र पहनते हैं कि टांगें और छाती खुली रहती है। किसी समय एक कुर्ता और धोती ही पहने हुये सब ठौर फिरते हैं यद्यपि कि अंगरखा औ अधो वस्त्र प्रभृति संपूर्ण कपड़े घर में रखे हैं अथवा प्रस्तुत हैं। अथवा वह प्राय: लोगों के दिखाने के अभिप्राय से ऐसे चमकीले भड़कीले वस्त्र पहनते ऐसा मार्ग में अकड़ते चलते और बार बार अपने वस्त्रों को देखते जाते हैं कि अवश्य देखनेवालों को बुरा लगता है। उद्दंड अथवा अभिमानी के परिच्छद में और मतिमान के पहरावे में केवल इतनाही अन्तर होता है कि उद्दंड में (शेख़ीबाज़) आवश्यकता से अधिक वस्त्र पहिनता और उस पर इतना फूलता है कि मारे हर्ष के वस्त्रों में फूला नहीं समाता और मतिमान केवल उतनाही पहनता है जितना कि लज्या स्थान प्रच्छन्न करने और स्वास्थ्य स्थिर रखने के लिये अवश्य है। कदापि यह समुचित नहीं कि हम परिच्छद के विषय में उद्दंडों के बराबर हो जाने अथवा

उन से बढ़ जाने का उद्योग करें। केवल इतना ध्यान रखना अवश्य है कि कल्पित परिच्छद अपनी जातियों और ग्रामनिवासियों से पृथक न हो और कोई ढंग ऐसा न हो कि लोग उस पर हंसें। हम को वह प्रणाली ग्रहण करनी चाहिये जो हमारे नगर के समवयस्क मतिमान मनुष्यों की है और जिन को कि लोग न उदंड कहते हैं और न सुस्त हो। परिच्छद और वस्त्र में यदि किसी प्रकार की अज्ञानता हो तो लोग अत्यन्त अप्रसन्न होते हैं और वास्तव में जो विचार की दृष्टि से देखो तो ढंग और प्रणाली निराली ग्रहण करनी क्या है मानो अपने देशवासियों की परिपाटी की लघुता और अपमान करना है। परिच्छद परिवर्तन करते समय वस्त्र भली भांति ठीकठाक कर के सावधानी से पहनो। घुंडी और बंद इत्यादि भली प्रकार देख लो इसलिये कि कोई बात ऐसी न रह जाय जिसे देखकर लोग हंसें परन्तु पहिनने के उपरांत फिर कुछ ध्यान न करो क्योंकि मैं ने प्राय: लोगों को देखा है कि जब वह कपड़े बदल कर कहीं जाते हैं तो इस भय से कि ऐसा न हो कि कोई कपड़ा बे ढंग हो वह बार बार अपने दामन को झटकते हाथ से पोंछते और स्वच्छ करते हैं। चाक को खींच कर ठीक करते और शिकन मिटाते हैं और अंगुली से प्रत्येक ठौर निष्प्रयोजन धब्बा और चिन्ह दूर करते हैं यह सब करतूतें अशोभन और ओछेपन की हैं बरन उचित यह है कि एकबार जहां तक हो सके कपड़ा ठीक कर के पहन लो उपरांत इस को भूल जाव और यह न ध्यान करो कि कपड़ा ढंग से हम पहने हैं अथवा बेढंग।

—:*:—

ढंग।

प्रत्येक व्यक्ति को चाहे धनवान हो अथवा अकिंचन किसी न किसी वस्तु के क्रय करने की आवश्यकता होती है और इस आवश्यकता के पूरी करने में अवश्य कुछ रुपया व्यय करना पड़ता है। इसलिये

प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि मितव्ययिता पर दृष्टि रखे जिस से हम को यह ज्ञात होता है कि हमारी आवश्यकता किस प्रकार अल्पव्यय में निवारण हो सकती है। कितना रुपया व्यय किया जाय जो आय से बढ़ न जाय कितना रुपया लड़कों बालों के प्रतिपालन और भवनीय व्यय के लिये उचित और आवश्यक है किस प्रकार थोड़े से वित्त में भी चैन से जीवन व्यतीत हो सकता है। अभिज्ञता के लिये कतिपय सिद्धांत मित व्ययिता के नीचे लिखे जाते हैं।

१—रुपया ठीक उतनाही व्यय करना चाहिये जितना हमारी आवश्यकता के दूर करने के लिये आवश्यकहो। आवश्यकता से अधिक व्यय करना अनुचित है कभी ऐसी वस्तु क्रय करनी न चाहिये जिस की हम को संपूर्ण आवश्यकता नहीं है चाहे वह वस्तु कैसीही सुन्दर मनोहर क्यों न हो और चाहे वह हमारी जान में कैसीही सस्ती क्यों न हो और चाहे वह कौड़ियों के मोलही क्यों न बिकती हो। क्योंकि जब अर्थ हमारा ठीक प्रयोजन के निवारण का है तो फिर ऐसी वस्तु जिस की हम को आवश्यकता नहीं है क्रय करने से क्या लाभ। यदि वस्तु सच-मुच सस्ती है तो उत्तम होगा कि हम उसे दूसरे मनुष्यों के लिये छोड़ दें इसलिये कि जिन मनुष्यों को वास्तव में उस वस्तु की आवश्यकता है वह उस को काम में लावें और उस से लाभ उठायें। स्मरण रखो कि बहुत कम वस्तुयें ऐसी हैं जो तत्वत: उचितभाव से सस्ती बिकती हैं। नहीं तो प्राय: यही होता है कि जो वस्तु इस समय हम को सस्ती ज्ञात होती है क्रय करने उपरांत जान पड़ता है कि मंहगी है और हम ने धोखा खाया।

२—जितनी वस्तु की हम को आवश्यकता हो केवल उतनी ही क्रय करनी चाहिये आवश्यकता से अधिक जो वस्तु क्रय की जाती है वह प्राय: व्यर्थ पड़े रहने के कारण नष्ट हो जाती है अथवा अनावश्यक कामों में व्यय होती है दूसरे यह कि बची होने से निर्लोभता से व्यय की जाती है और अन्त को यह थोड़ा थोड़ा छुटा हुआ बहुत हो जाता है जिस से अधिक रुपये की हानि होती है। आश्चर्य की बात है कि जब

हमारे अंगरखे में आध गज़ कपड़ा घट जाता है तो हमको बहुत शोक होता है हम अपने हृदय को बहुत धिक्कारित करते हैं कि क्यों न हम ने वस्त्र विक्रेता से आध गज़ कपड़ा और लेलिया परन्तु जब आवश्यकता से अधिक आध गज़ कपड़ा ले लेते हैं तो कुछ भी खेद और शोक नहीं करते यद्यपि जैसा आध गज़ कपड़ा कम लेना अज्ञता है वैसाही आध गज़ कपड़ा आवश्यकता से अधिक लेना भी अल्पज्ञता है।

३—वस्तु को आवश्यकता से अधिक व्यय करना उचित नहीं है। प्रत्येक वस्तु को इस परिमाण से व्यय करना चाहिये कि व्यय होने के उपरान्त भी थोड़ा भाग बचता रहे।

४—वस्तुओं की रक्षा करनी चाहिये। असावधानी के कारण प्रायः वस्तुयें नष्ट हो जाती हैं जैसे प्रायः उत्तमोत्तम वस्त्रों और ऊर्ण वस्त्रों को कीड़े खा जाते हैं रोटियों में भुकड़ी लग जाती है अनाज चूहे खा जाते हैं। इस प्रकार वह वस्तु न अपने काम आती है न किसी दूसरे मनुष्य के बरन व्यर्थ नष्ट हो जाती है। इस के बचाव के लिये योग्य है कि उचित भाजन एकत्र किये जावें और वस्तुओं की पूरी पूरी रक्षा की जाय।

५—प्रत्येक वस्तु उचित मूल्य पर क्रय करनी चाहिये मदगलित हो कर अधिक मूल्य देना समुचित नहीं जहां तक हो सके वस्तु स्वयं क्रय करनी चाहिये क्योंकि प्रायः सेवक अथवा भृत्य अपने एक पैसा पाने के लिये स्वामी की बड़ी हानि करते हैं।

६—बहुत सा रुपया प्रायः निष्प्रोयजन बनावट सजावट और दिखलावट में व्यय होता है जिस को आवश्यकताओं से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है जैसे उत्तमोत्तम पदार्थ खाना बड़ी धूम धाम से आगामि दिवस को मित्रों का निमन्त्रण करना उत्तमोत्तम चमकीले भड़कीले वस्त्र धारण करना बहुमूल्य अश्वों और अधिक मूल्य की विलायती गाड़ियों पर चढ़ना निरर्थ यात्रा अथच पर्यटन करते फिरना इत्यादि। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी बातों से क्षण भर के लिये एक प्रकार का आनन्द होता है परन्तु यह आनन्द कदापि उस वास्तव और दृढ़ हर्ष के समान

नहीं है जो ढंगवाले मनुष्य को अपने उत्तम प्रबन्ध से प्राप्त होता है। स्मरण रखो कि व्यर्थ दिखलावे में जो मनुष्य मुद्रा व्यय करता है उस की कामनादिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है और मन को कभीचैन नहीं मिलता है। आज सहस्र रौप्य मुद्रा का अश्व क्रय किया चित्त प्रसन्न हुआ कल दूसरे मनुष्य के पास जो चार सहस्र का अश्व देखा तो अपना घोड़ा आंखों से गिर गया और उस का आनन्द जाता रहा अब चार सहस्र-वाले अश्व के क्रय करने की कामना हुई अभिप्राय यह कि वह सदा इसी तर्क-वितर्क अथवा उधेड़ बुन में अपना संपूर्ण रुपया व्यय करके बैठ रहता है और जिस समय प्रयोजनीय वस्तु क्रय करने की आवश्य-कता होती है तो रुपया उपलब्ध नहीं होता है और बड़ा क्लेश और अतिव्यग्रता होती है।

—

संतोष।

इस में सन्देह नहीं कि संतोष में एक प्रकार से वह संपूर्ण भलाइयां, उत्तमतायें उपस्थित हैं जो लोग पारस पत्थर में बतलाते हैं अर्थात् संतोष से यद्यपि धन प्राप्त नहीं होता परन्तु धन की कामना न रहने से वही बात प्राप्त होती है। संतोष यद्यपि यह नहीं कर सकता कि मनुष्य के असमंजस और चिन्ता को मिटा दें परन्तु यह तो कर सकता है कि मनुष्य ऐसी दशा में भी प्रसन्न रहे। प्रत्येक हृदय को जिस में संतोष है कैसीही आपदा होय परन्तु वह अत्यन्त कोमलता और सुगमता के साथ उसे सहन करता है। जिस के हृदय में संतोष है कभी परमेश्वर की कृतघ्नता न करेगा और न अपने भाग्य को बुरा भला कहेगा बरन जिस दशा में वह आ पड़ा है उसी को अपने लिये अत्यन्त प्रयोजनीय समझेगा। बुराइयों की ओर चित्त की प्रवृत्ति और मन के अनुचित उमंग इस के द्वारा दूर हो जाते हैं। और इस के कारण से मनुष्य का परिभाषण उत्तम और उस के संकल्प ऊंचे गंभीर अथवा परितोलित (संजीदा) हो जाते हैं।

संतोष का स्वभाव डालने के लिये कई युक्तियां हैं जिन में से दो का वर्णन होता है। पहला यह कि मनुष्य को यह सोचना चाहिये कि आवश्यकता से कितना अधिक उस के पास है और दूसरा यह कि उसे विचार करना चाहिये कि जिस दशा में अब है उसे निकृष्टतर दशा में भी वह हो सकता था।

यूनान में आरिस्टियस नामक एक मतिमान था उस से एक मित्र ने कहा कि "अत्यन्त शोक की बात है कि आप का एक खेत हाथ से निकल गया"। उस ने उत्तर दिया कि "परमेश्वर की दया से अब भी मेरे पास तीन बड़े बड़े खेत विद्यमान हैं और तुम्हारे एक ही है, मुझ को तुम्हारे लिये शोक करना चाहिये था न कि तुम को मेरे लिये"।

अज्ञों का ध्यान अधिकतर इस बात पर रहता है कि क्या वस्तु उन के हाथ से जाती रही और इस पर कम कि क्या वस्तु उन के पास है और ऐसे लोगों की दृष्टि विशेषत उन लोगों पर रहती है जो उन से धनवान हैं और उन पर कम जो उन से भी अधिक क्लेश और दुख में है। जीवन के संपूर्ण आनंद एक संकीर्ण वृत्त (चित्त) में परमित हैं और यह मनुष्य का केवल अज्ञान है कि वह समझता है कि ऐश्वर्य और सुख्याति में आनन्द है धनवान उसे कहना चाहिये कि जिस के पास उस की आवश्यकताओं से अधिक उपस्थित हो। अतएव इस विचार से धनवान उस मनुष्य को नहीं कह सकते जो अतीव ठाट बाट और चड़क भड़क से रहता है वरन वास्तविक धनवान वह है जो अपनी आवश्यकताओं को अपनी पूंजी तक परमित (महदूद) रखता है। ओढन देख कर अथवा दुकूलानुसार पद प्रसारण करता है और अपने आय को अपने आवश्यक व्यय से अधिक जानता है। उच्चश्रेणी अथवा बड़ी पदवी के लोग प्रत्येक समय धनिकसबन्धी आवश्यकता में फंसे रहते हैं क्योंकि इस के परिवर्त्तन में कि वह अपने वैभव और गुरुता से कथित वास्तविक आनंद लाभ करें उन का उद्योग प्रत्येक समय इस बात में रहता है कि दिखलावे औ ठाट बाट में सम्पूर्ण धनिकों से बढ़ जायं। बुद्धिमान लोग नित्यशः ऐसे कौतुक अवलोकन किया करते हैं और

अपनी कामनाओं का ह्रास कर के अपने थोड़े बित्त में वह लोग उस प्रच्छन्न आनंद को पालेते हैं जिस के अनुसंधान में लोग भटकते फिरते हैं।

पिटाकस नामक एक मतिमान था उस का भ्राता काल कवलित हो गया और सम्पूर्ण पैतृक ग्राम तथा धन पिटाकस का हो गया। उस समय लिडिया के महाराज ने किसी बात से प्रसन्न हो कर पिटाकस को बहुत कुछ रौप्य मुद्रा देना चाहा। परंतु उस ने महाराज का धन्यवाद कर के निवेदन किया कि कृपानिधान। मेरे पास आवश्यकता से अधिक प्रस्तुत है उसी को मैं भली भांति काम में नहीं ला सकता।

संक्षेप यह कि संतोष वास्तव में धन है और रुपया वाला होना और इच्छुक बन जाना है। भिषक सुक़रात का कथन है कि "संतोष प्राकृतिक धन है" इस में इतना और अधिक कर देना चाहिये कि "धनवान होना कृत्रिम (मसनूई) अकिंचनता है"।

आरोग्यता स्थिर रखना।

आरोग्यता स्थिर रखने के लिये शारीरिक परिश्रम अथवा पथ्य की अति आवश्यकता है पर मैं पथ्य को परिश्रम अर्थात् व्यायाम से बढ़ कर समझता हूं इस लिये कि पथ्य एक ऐसी वस्तु है जिस को प्रत्येक धनवान और अकिंचन, समर्थवान और असमर्थ प्रत्येक दशा प्रत्येक स्थल और प्रत्येक ऋतु में बिना समय और रजतमुद्रा के व्यय के कर सकता है। व्यायाम से अजीर्णता निवारण हो जाती है पथ्य उसे उत्पन्न ही नहीं होने देता। व्यायाम रोग का अवरोधक होता है किन्तु पथ्य उसे अनशन द्वारा भस्म कर डालता है।

अब यह प्रश्न हो सकता है कि औषधि क्या है? औषधि कुछ नहीं है यह केवल व्यायाम अथवा पथ्य का "परिवर्त्त" है। यदि मनुष्य पथ्य से रहे अथवा व्यायाम करता रहे तो उसे थोड़ी औषधि की भी आवश्यकता न होगी। बहुत कड़ी मांदगियों के अतिरिक्त क्योंकि ऐसी दशाओं में व्यायाम अथवा पथ्य का कार्य्य जो बहुत धीरे धीरे होता है

लाभ नहीं पहुंचा सकता। मैं अपने इस कथन के सिद्ध करने के लिये यह प्रमाण देताहूं कि व्यायाम आरोग्यता के लिये उपयोगी है। देखो वह लोग जो अटन करने और क्रिकेट पर दिन व्यतीत करते हैं हमलोगों की अपेक्षा अधिक नैरुज्य होते हैं और उन की आयु भी अधिक होती है।

साधारण आहार उत्तम आहार की अपेक्षा सदा उपयोगी होता है यही कारण है कि प्रकृति ने प्रत्येक जीवधारियों के लिये भिन्न भिन्न प्रकार का आहार नियत कर दिया है। जैसे चरनेवाले घास और फाड़ने वाले मांस खाते हैं। मनुष्य के अतिरिक्त कि वह ऐसा है कि उस से कथित वस्तु बचने नहीं पाती यहां तक कि वह वैपिनोय बेर और छत्राक भी चट कर जाता है।

अब देखना चाहिये कि धनिकों के पाकालय में जहां सैकड़ों प्रकार के भोजन, मत्स्य, दुग्ध, चटनी, अंडों, प्रभृति की भांति के जो सुन्दर कटोरियों अथच भोजनों में सजे हुये हों खाने से प्रकृति में कैसे पृथक पृथक गुण उत्पन्न होते होंगे। एक वैद्य का कथन है कि ऐसे उत्तम निमंत्रण के समय मुझे किसी भाजन की आट में तप किसी के आड़ में खांसी और किसी के आड़ में अजीर्ण धात में छिपा हुआ दृष्टिगत होता है।

पथ्य के लिये कथित मुख्य रीति नियत करना असम्भव है, क्योंकि वही आहार जो एक मनुष्य के लिये उपयोगी है दूसरे के लिये जल वायु के विचार से और बल के कारण हानिकर होता है परन्तु संसार में बहुत थोड़े मनुष्य ऐसे है जो यह न जानते हों कि किस प्रकार और किस परिमाण का आहार उन की प्रकृति के लिये अनुकूल अथवा समुचित है।

लोगों का कथन है कि जिस समय एथेंस नगर में महामारी जिस का विवरण बड़े बड़े इतिहासों में है फैली तो भिषक सोक़रात वह विद्यमान था सहस्रों जीव जाते रहे शतशः मनुष्य मरगये पर पथ्य से रहने कारण सोक़रात के सिर में कभी पीड़ा भी न हुई। वैद्यों और

महाराजों के जीवन का मिलान करने से यह बात सिद्ध है कि वैद्य, राजाओं की अपेक्षा अधिक काल पर्यंत जीवित रहते हैं और उन से उन की आयु बड़ी होती है।

लूइसकारनियर अभिधान का एक मनुष्य जो एथेंस नगर का निवासी था प्रथम बहुतही क्षणांग और निर्बल था परन्तु पथ्य से रहने के कारण चालीस वर्ष की अवस्था में उसे पूरी आरोग्यता प्राप्त हो गई और अस्सी वर्ष की अवस्था में तो इतनी पुष्टता प्राप्त हुई कि उस ने कतिपय पुस्तकें निर्मित कीं। जब सौ वर्ष का हुआ तो इस संसार से परयाता की किन्तु मरते समय किसी प्रकार का दुख न हुआ, यह ज्ञात होता था कि मानों सुख की निद्रा में अचेत है।

सब से उत्तम युक्ति आरोग्यता बनाये रखने की यह है कि मनुष्य आप अपनी परीक्षा से जान ले कि कौन सी वस्तु उस को लाभ पहुंचाती है और कौन हानिदायक होती है। फिर भी यों समझना कि अमुक वस्तु हमारी प्रकृति के विरुद्ध होती है इसलिये उसे त्यक्त करते हैं अधिक उपयोगी इस बिचार करने की अपेक्षा है कि अमुक वस्तु से हम को कोई हानि दृष्टिगोचर नहीं हुई इसलिये उसे व्यवहार में लाते हैं। युवा अवस्था में किसी वस्तु की हानि प्रायः नहीं ज्ञात होती और उन का बुरा प्रभाव प्रगट नहीं होता परन्तु वृद्धावस्था के लिये पहले से पथ्य का बिचार अवश्य है और यह न समझना चाहिये कि वय के प्रत्येक भाग में वही बातें सम्भव होंगी। तुम्हारे खाने पीने की अपेक्षा यदि किसी वस्तु में बड़ा अन्तर पड़ जाय तो उस से सावधान हो और समर्थ भर अपर वस्तुओं को भी बदलकर पहले के अनुसार कर लो। क्योंकि जैसे देश के प्रबन्ध में किसी एक बड़े परिवर्त्तन के होने में उस से अधिक भय रहता है कि कतिपय परिवर्त्तन एक साथ ही कर दिये जावें वैसाही आरोग्यता के प्रबन्ध का भी विवरण समझो। खाने, पीने, सोने, व्यायाम करने, और परिच्छद पहनने इत्यादि में अपने स्वभाव को पहले भली प्रकार समझ लो और जिस के कारण से तुम को कुछ हानि की आशंका हो धीरे धीरे उस के बदल देने अथवा छोड़ देने की चिन्ता

करो। परन्तु इस रीति से छोड़ना प्रारम्भ करो कि यदि कदाचित उस में तुम को किसी हानि का भय हो तो फिर पूर्ववत प्रचलित कर दो क्योंकि कतिपय वस्तुयें ऐसी हैं कि उन्हें साधारण लोग अच्छा अथवा हानिकर समझते हैं परन्तु मुख्य मुख्य मनुष्यों के लिये वे विरुद्ध गुण उत्पादन करती हैं। अतएव कदाचित तुम्हारे लिये भी यही बात हो। भोजन करने और सोने और व्यायाम करने के समय प्रसन्न चित्त और निश्चिन्त रहना मनुष्य की जीवनवृद्धि का कारण होता है। और यदि यह प्रश्न करें कि कैसे ध्यान और अनुराग हृदय में होने चाहिये तो भली भांति स्मरण रक्खो कि ईर्षा, चिन्तोत्पादक बिचार, हृदयदाहक क्रोध, कठिन और गूढ़ उद्योग, अमित आनन्द, ऐसा शोक जिस का प्रगटाव दूसरों पर न हुआ हो, यह सब जहां तक हो सके हृदय से दूर रहें और इन के परिवर्त्त में हृदय में इन सब बातों का सन्निवेश हो, अर्थात्, आशा, प्रसन्नचित्तत्व यह नहीं कि अल्प काल का आनन्द, भांति भांति के हर्ष यह नहीं कि मित से अधिक कल्पित मुख्य आनन्द, नवीन वस्तु विषयक प्रशंसा और बिचित्रता, ऐसी विद्या का पठन जिन से बड़े बड़े और विख्यात कार्यों में अभिज्ञता हो, जैसे इतिहास उपन्यास और प्राकृतिक घटनाओं पर बिचार करना। यदि आरोग्यता की अवस्था में औषधि के व्यापार से सम्पूर्ण अपरिचित रहोगे तो रुजग्रस्तावस्था में भी तुम्हारा स्वभाव औषधि से घृणा करता रहेगा। और यदि आरोग्यता के समय में औषधि का व्यवहार अत्यन्त रखोगे तो रुजग्रस्तावस्था में उस का उपयुक्त प्रभाव न हो सकेगा। यदि किसी को औषधि खाने की प्रकृति न हो गई हो तो उस को उचित है कि मुख्य मुख्य ऋतुओं में मुख्य प्रकार की औषधि का व्यवहार न करे वरन मुख्य प्रकार के आहार को मनोनीत कर रखे क्योंकि ऐसे आहार से शरीर को लाभ बहुत अधिक पहुंचेगा और औषधि खाने की अपेक्षा उस के व्यवहार में चित्त को थोड़ा अवश करना होगा। यदि तुमारे शरीर में कल्पित नवीन रोग दृष्टि आवे तो उस को तुच्छ मत समझो उचित है कि अभी से उस के विषय में लोगों की अनुमति लो। रोग की दशा में आरोग्यता

का विचार रखो और आरोग्यता में परिश्रम और व्यायाम करने का। क्योंकि जो मनुष्य आरोग्यता की दशा में अपने शरीर को परिश्रम का स्वभाव दिलाता है रुजग्रस्त होने पर प्राय: केवल साधारण आहार के परिवर्त्तन अथवा नियमित पथ्य से नेरुज्य हो जाता है आरोग्यता स्थिर रखने और आयुवृद्धि के लिये यूनान के एक अति मतिमान भिषक का कथन है कि मनुष्य को अपने स्वभावों को परिवर्त्तन करते रहना और भिन्न भिन्न बातों का स्वभाव में प्रयोग करना चाहिये। परन्तु उस बात को ओर अधिक ध्यान देना चाहिये जो प्रकृति और आरोग्यता के अनुकूल आती है। पूर्णोदर खाने और बुभुक्षित रहजाने, दोनों बातों की प्रकृति आवश्यक है, किन्तु पूर्णोदर खाने को अधिक, रात भर जागने और सोने दोनों को परन्तु सोने को अधिक, बैठे रहने और कार्य करने दोनों को पर कार्य करने को अधिक, निदान इसी प्रकार और बातों को समझ लेनी चाहिये। इस युक्ति से दोनों स्वभाव पड़ जावेगा, और इच्छाओं के वश में न रहना पड़ेगा।

——

विद्यार्जन।

विद्या का अर्जन करना तीन प्रयोजन से होता है १—अपना चित्त प्रसन्न करने के लिये २—लोगों की दृष्टि में प्रतिष्ठा वृद्धि के लिये ३—योग्यतालाभ करने के अभिप्राय से। पहला प्रयोजन मुख्यत: उस समय उत्तमता से पूर्ण हो सकता है जब मनुष्य प्रत्येक ओर से सम्बन्ध तज कर एकांत में रहना उत्तम समझे। दूसरा तब प्राप्त होता है जब दूसरों से वार्तालाप करने का अवसर हस्तगत होता है। और तीसरा उस समय पूर्ण होता है जब कथित कार्य सम्पादन किया जाता है। अथवा विचार प्रगट करने का संयोग होता है। परीक्षा से केवल मुख्य मुख्य बातों में कार्य निकलता है और परीक्षक लोग केवल उन्हीं बातों को जांच भली भांति कर सकते हैं जो उन की परीक्षा में आई हैं। पर विद्वान बहुधा प्रत्येक बात में परामर्श देने के योग्य और सर्व

प्रकार के कार्यों में हस्तक्षेप करने के योग्य हो सकता है। जीवन का बहुत अधिक भाग पुस्तकों ही के अवलोकन में व्यय कर देना आलस्य है। विद्या का व्यवहार केवल सन्मान की अधिकता के लिये समझना घमंड है। और प्रत्येक कार्य में पुस्तकों ही के नियमों का अनुसरण करना विद्वानों का अज्ञान है। विद्या यदि अर्जन की जावे तो निस्सन्देह मनुष्य को प्रगल्भ पद पर पहुँचाती है। पर विद्या की प्रगल्भता (कमाल) केवल परीक्षा से हो सकती है क्योंकि ग्रंथों से जो अभिज्ञता प्राप्त होती है वह साधारण होती है और उन की मित. केवल परीक्षा निश्चित कर सकती है। प्रवीण पुरुष विद्या का भरोसा नहीं करता। अज्ञों को विद्या पर आश्चर्य होता है और बुद्धिमान उस को व्यवहार में लाता है किन्तु विद्या का व्यवहृत करना स्वयमेव नहीं आसकता वरन इस के अतिरिक्त परीक्षा की भी आवश्यकता होती है। पढ़ना दूसरों की बात काटने, उन के तर्कों के व्यर्थ करने, बहुत सी बातों को कल्पना करने और मान लेने, और प्रत्येक मनुष्य से विवाद करने और शास्त्रार्थ के अभिप्राय से न होना चाहिये। वरन विवेचना और विचार करने की दृष्टि से प्रायः पुस्तकों को केवल चख लेना, किसी किसी को निगल जाना, और कई को चबा जाना और पचालेना चाहिये। प्रयोजन यह कि कतिपय पुस्तकों के केवल मुख्य भागों को अवलोकन कर लेना चाहिये दूसरों को पठन करना चाहिये परन्तु अधिक परिश्रम और चित्त को उद्विग्न कर के नहीं। किन्तु कतिपय ऐसी हैं। जिन्हें भले प्रकार से ध्यान देकर पढ़ना और स्मरण रखना चाहिये। कतिपय पुस्तकों को संक्षिप्त और संग्रह करके पठन करने के लिये परामर्श दिया जा सकता है परन्तु ऐसा उन्हीं विद्याओं और पुस्तकों के लिये होना चाहिये जो बहुत आवश्यक नहीं हैं।

पठन करने से अभिज्ञता, शास्त्रार्थ अथवा विवाद करने से अवसर पर आवश्यक बातों का सूझ जाना और जो बात स्मरण रखने के योग्य हृदय में आवे अथवा दृष्टिगोचर हो उसे लिख रखने से संयम और सुगमता प्राप्त होती है। अतएव यदि कश्चित व्यक्ति लिख रखना

अभिष्ट इन समझे तो उसे अपने स्मरण का दृढ़ होना चाहिये इसलिये कि लोगों के सन्मुख जो बात नहीं भी जानता उस में भी अपने को अभिज्ञ प्रगट कर सके। इतिहास के पठन से बुद्धि की वृद्धि होती है। काव्य से वाचालता और शीघ्रोत्तर देना आता है। गणित जानने से चित्त असमंजस में डालनेवाले कार्यों की ओर लग सकता है। विज्ञान पढ़ने से विचार करने की शक्ति पुष्ट होती है। नीति पठन से चित्त अथवा प्रकृति में सभ्यता और धीरता आती है। न्याय और साहित्य से शास्त्रार्थ और विवाद करने का आनंद मिलता है। जिस विद्या में रक्त रहे कुछ दिवसोपरांत वैसी ही प्रकृति भी हो रहती है। बरन मुख्य २ प्रकार के अवगुण जो स्वभाव में हो सकते हैं मुख्य २ प्रकार की विद्याओं के अर्जन करने का उद्योग करने से मिट जाते हैं। जैसे मुख्य प्रकार के व्यायाम शरीर के एक मुख्य भाग के लिये होते हैं "जैसे बाण चलाना छाती के लिये, धीरे धीरे टहलना उदर के लिये" उसी प्रकार मुख्य प्रकार की विद्या से मुख्य प्रकार का अवगुण मिट सकता है। जैसे यदि किसी का चित्त कार्यों में नहीं लगता हो तो उस के लिये गणित औषध है। यदि बुद्धि सूक्ष्म बातों से भागती हो तो दर्शनशास्त्र पठन करना चाहिये। यदि प्रकृति में वह शक्ति अल्प हो जिस से लोग प्रत्येक बात की जांच करते हैं और किसी बात के सिद्ध करने के लिये प्रमाण और कारणों को संग्रहीत करते हैं तो न्यायालयों (अदालतों) के विचारों (फैसलों) का अवलोकन करना उत्तम है। इसी प्रकार प्रत्येक अवगुणों के लिये पृथक पृथक विद्या कथन की जा सकती है।

कैसे सोना चाहिये और उत्तम ढंग सोने के क्या हैं।

बड़े भाग्यवान हैं वह लोग जो दिन भर कार्य सम्पादन में तत्पर रह कर रात को सोते हैं। उन को न केवल आनन्दजनक उत्तम गहरी नींद आती है वरन जागने के उपरान्त अद्भुत प्रकार का आनन्द उपलब्ध होता है। इस के विरुद्ध जो लोग बहुत सा दिन का भाग भी सोने में गंवा

रहते हैं और निष्कर्मी होते हैं उन को निशाकाल में भली भांति निद्रा नहीं आती और कदाचित उलटी करवटें परिवर्त्तन करते झपकी की अवस्था में लेटे भी रहें तो प्रातःकाल चित्त सुस्त और आलस्य ग्रस्त हो जाता है, बार बार जंभाइयां आती हैं और शरीर आलसमय हो जाता है। आरोग्य और स्वास्थ्य की दशा में मनुष्य को २४ घंटे में अधिक से अधिक आठ घंटे और कम से कम छ घंटे सोना चाहिये और अतिआवश्यक है। बालकों और बृद्धों केलिये यह नियम नहीं है उन को कुछ अधिक समय सोने के लिये प्रयोजनीय होता है। पर सोने के लिये समयनियत करलेना अति उत्तम बात है क्योंकि नियत समय पर आप ही निद्रा आ जाती है। भारतवर्ष में ग्रीष्म ऋतु में दिन के समय भी थोड़ा सोना समुचित है। पर दो घंटे से अधिक नहीं। जाड़े और बरसात के दिनों में दिन के समय सोना अच्छा नहीं यदि रात के जागे न हों अथवा ऐसी ही प्रकृति न पड़ी हो वा परिश्रम अथवा कार्य सम्पादन करते करते दो पहर से प्रथम श्रांत न होगये हों, ऐसी दशा में अल्पकाल के लिये लेट रहना अयोग्य नहीं। ग्रीष्मऋतु में बिछावन कुछ कड़ा और हलका और जाड़े में नरम और उष्ण होना चाहिये। बिछावन को ग्रीष्म ऋतु में खुले वायु आने वाले भवन में यदि संभव हो तो व्यजन के अधोभाग में नहीं तो हलके छाये के नीचे वा बाह्य प्रान्त में रख कर शरीर को वस्त्र से ढांप कर सोना श्रेयस्कर है। परन्तु जहां तक हो सके पृथ्वी पर, अकेले वृक्ष के नीचे, चतुष्पथ में, और आर्द्र वस्त्रों को पहन कर, अथवा पैरों के पानी में डुबोकर, वा सर्वांग नग्न कर सोना चाहिये ; शीतकाल में ऐसे घर के भीतर जहां आमने सामने की वायु वेग से न आती हो कथित उष्ण भवन में तूल पूरित अथवा ऊननिर्मित वस्त्र को ओढ़कर सोना चाहिये पर उस वस्त्र में सुखाच्छादन करके अथवा कथित अपर व्यक्ति के साथ एक ही बिछावन एक ही वस्त्र के भीतर न सोना चाहिये। बन्द गृह के भीतर कोयला अथवा लकड़ी जला कर और कपाट बन्द करके सोना बहुत अश्रेय है वरन मृत्यु का सामनाकरना है। इस छोटी सी बात की ओर हमारे देशवालों

को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। जब मैं विद्यार्जन के लिये लाहौर मेडिकल कालेज में पढ़ता था तो दिसम्बर के महीने में दो मनुष्य एक अचेत और एक अल्प अचेत चारपाई पर डाल कर मेयो औषधालय(अस्पताल) में लाये गये। उन के साथ जो उन के सम्बन्धियों में से कतिपय मनुष्य थे मैंने उन से पूछा कि इन रोगियों को क्या रोग है? उन्हीं ने उत्तर दिया कि इन पर भूत वा डाकिनी बतलाते हैं। यह सुन कर मैं और मेरे कतिपय सहपाठी मित्र आन्तरिक चाव से इस विषय के उत्कण्ठित हुये कि देखिये डाक्टर महाशय इन का भूत वा डाकिनी किस औषध से निवारण करते हैं। कियतकालोपरान्त भाग्योदय से मिस्टर डाक्टर ब्रौन वहां सुशोभित हुये उन्होंने देखतेही कहा कि ये दोनों मनुष्य कदाचित लकड़ी अथवा कोयला जला कर बन्दगृह के भीतर रात को सोये होंगे। यह श्रवण करतेही उन के साथियों ने उत्तर दिया कि हां! निस्सन्देह ऐसाही हुआ था जो रोगी कि थोड़ी मूर्छा में है उस ने अकुला कर शीघ्रता से उठकर कपाट खोल दिया था और कोलाहल करने लगा था। इतने में हम सब जाग उठे और इनकी दशा देख कर चमत्कृत हुये। कई एक भूत उतारनेवाले, तंत्र मंत्र करनेवाले, यंत्र और गंडा लिखने वाले, हम ने बुलाये, परन्तु किसी का उद्योग उपयोगी न हुआ। निदान एक हमारे मित्र अंगरेज़ी अध्ययन करनेवाले ने हम को अनुमति दी कि इन को औषधालय में ले जाओ कदाचित वहां पर इन को औषधि हो जावे। यह सुन कर डाक्टर महाशय ने उन की चारपाइयों को औषधालय के सामने के खुले मैदान में डलवा दिया और कुछ थोड़ी सी औषधि देने की आज्ञा दी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया दोनों रोगी नैरुज्य होते गये। यहां तक कि आगामि दिवस प्रातष्काल दोनों अपनी ठीक ठीक चैतन्यावस्था में थे। आगामि दिवस डाक्टर महाशय ने एक थोड़ा सा प्रशंसनीय कथन व्याख्यान की भांति उन रोगियों के पास खड़े होकर विद्यार्थियों को श्रवण कराया जिस से हम सब पर भूत और डाकिनी की व्यवस्था भली भांति प्रगट हो गई और ऐसा चिन्ह हृदय पर हो गया कि जीवन पर्यन्त न भूल सके।

जब मैं पढ़ लिखकर पाठशाला से निकला और अमृतसर में नियत हुआ तो ऐसीही घटना स्वयं मेरे दृष्टिगत हुई। एक दिवस निशीथकाल के समीप एक पुलिस के निम्न कर्मचारी ने मुझ को जगाया और कहा कि तीन पुरुष जो अमुक कोठरी में रात को सोये हुये थे अकस्मात मूर्च्छित अथवा अचेत हो गये हैं। मैं उसी समय उठा और जा कर देखा तो वैसेही लक्षण उन में पाये जो अध्ययनावस्था में उन भूतवालों में देखे थे। यतः मैं ने वह घटना चाव से देखी थी अतएव उसी समय निर्भयता अथच निश्शंकता से कह दिया कि जहां पर यह लोग सोये थे उस कोठरी में आग अथवा कोयला जलाकर सोये होंगे। देखने से एक अंगेठी कोयलों से भरी हुई जिस में से आधे के समीप जल चुके थे एक कोने में रखी हुई पाई गई। तब तो मैं ने तत्काल उन लोगों को बाहर मैदान में डलवा दिया। आधी रात का समय था और ठंढी ठंढी वायु चल रही थी, बारे वायु में आतेही उन को सुख जान पड़ा। मैं ने थोड़ी औषधि मंगा कर दी और वहां ही प्रातःकाल पर्यंत बैठा रहा। थोड़े दिन चढ़े तक वह सब के सब चैतन्य हो गये।

स्मरण रखना चाहिये कि इन तीनों रोगियों पर थोड़ा ही प्रभाव कारबोनिक गास का जो कोयले के जलाने से उत्पन्न होती है हुआ था क्योंकि घर का किवाड़ बंद कर के, सोने के केवल दो घंटे के पीछे एक उन में से घबरा कर उठ खड़ा हुआ और किवाड़ खोल दिया इस कारण से वह बच गये नहीं तो प्रातःकाल पर्यंत यदि उसी घर में रहते तो अवश्य सब के सब निर्जीव निकलते। इस के उपरांत फिर भी मुझे दो एक बार ऐसा ही संयोग हुआ। अब पाठकों और स्वदेशवासियों से मेरा यह निवेदन है कि थोड़े असंयम के कारण से कैसी आपत्ति में जीव पड़ सकता है। अतएव समुचित है कि इस संयम को प्रत्येक मनुष्य भले प्रकार स्मरण रखे। सोने से प्रथम जलते हुये कोयलों अथवा अग्नि इत्यादि को शयनागार से बाहर निकाल कर रख देना श्रेयस्कर है।

यदि ऐसी ही आवश्यकता अग्नि को घर के भीतर रखने की हो तो बाहर से भली भांति जला कर और लाल कर के फिर घर के भीतर रखना योग्य है। मिट्टी का दीवा जलता हुआ छोड़ कर बन्द घर के भीतर सोने से भी ऐसीही आपत्ति उपस्थित होती है। इसलिये सोने से पहले दीपक को अवश्य शांत कर देना चाहिये जिस के लिये पथोय (रूज़इबी) पुस्तकों की भी ऐसीही शिक्षा है।

जब उक्त विषयों पर दृष्टि रखकर सोने के लिये उद्युक्त हो तो कुछ समय प्रथम कार्य करना छोड़ दो और सांसारिक चिन्ताओं को एक ओर रखकर सज्या पर शयन करो। अब करवट का पूर्ण ध्यान रखकर सोना समुचित है। करवट का प्रभाव निद्रा पर अधिक होता है। यहां तक कि असुखद और संकीर्ण करवट से आनन्द औ निद्रा का अवरोध हो जाता है। यद्यपि ढीले हाथ छोड़ कर चित अथवा पीठ के बल लेटने से सम्पूर्ण शरीर के अंगों को सुख मिलता है और उन मांदगियों में जिन में कि रोगी बहुत निर्बल और दुर्बल हो जाता है वह ऐसी करवट पर सोता है। परन्तु जब कि आपही आप रोगी इस करवट को छोड़कर दाहिनी अथवा बाईं करवट बदलता है तो वैद्य लोग उस को नैरोग्य होने का चिन्ह समझते हैं। तथापि निरोग और नैरुज्य मनुष्य के लिये पीठ के बल लेटना हानिकर होता है। और जब हृदय निर्बल होता है अथवा कथित मस्तिष्क की मांदगी में वा सिराओं की निर्बलता में इस करवट पर लेटने से रुधिर सिर के पृष्ठभाग की ओर गमन करता है तो भयंकर स्वप्न दृष्ट गत होने लगते हैं। इस के अतिरिक्त वह लोग जिन का कार्य सामने की ओर पीठ झुकाकर करने का है पीठ के बल सीधे होने में दुख पाते हैं। और वह लोग जिन का वक्षस्थल संकीर्ण है अथवा किसी रुज के कारण पीठ के बल नहीं सो सकते प्रायः निद्रित अवस्था में बड़े शब्द से स्वास लेते हैं और इस का कारण भी करवट पर न सोना है क्योंकि उन का कोमल तालु और कौआ जिह्वा पर लटका पड़ता है और जिह्वा पीछे हटकर वायु की नाली का मार्ग किञ्चित अवरोध कर देती है और स्वास के साथ शब्द निकलना प्रारम्भ हो जाता

है। इसलिये उचित है कि करवट पर शयन करें। बहुधा दाहिनी करवट पर शयन करना समुचित है। जो लोग मनुष्य के शरीर की बनावट से पूर्ण अभिज्ञ हैं वे इस विषय को भली भांति जानते हैं कि दाहिनी करवट पर शयन करने से भोजित वस्तु आमाशय के भीतर से सुगमतया अन्तड़ियों में चली जाती है परन्तु विरुद्ध इस के बाईं करवट पर सोने से भोजित वस्तु आमाशय के दूसरी ओर पड़ी रहती है इस के अतिरिक्त छाती भी दब जाती है। जब दाहिनी करवट से मनुष्य थक जावे तो दूसरी करवट बदलना हानिकारक नहीं है। एक ऐंगलैण्डीय विद्वान का कथन है कि प्रथम दाहिनी करवट पर सोलह बार स्वांस लेने तक अथवा यह कि एक मिनट पर्यंत सोयें और फिर बाईं करवट पर इस से द्विगुण काल पर्यंत और तदोपरांत जिस करवट पर चाहें सो सकते हैं। दोनों भुजा और हाथों को सिर के ऊपर को ओर ले जाकर सोना भी उत्तम नहीं है। परन्तु यह आकार प्राय: निद्रितावस्था में हो जाता है क्योंकि इस प्रकार शयन करने से रुधिर सिर और कंठदेश में सुगमता से भ्रमण करता है।

कांधों के ऊपर उठ जाने से छाती के विभाग तनजाते हैं तो स्वांस लेने और छाती के फैलने और सिकुड़ने में सुगमता होती है। परन्तु इस करवट से कभी कभी सिर में पीड़ा भी नींद में हो ज्ञात होने लगती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि दाहिनी करवट पर लेटने से भी निद्रा नहीं आती, तब यह सुगम युक्ति उपयोगी अथच कार्यकारिणी हो सकती है कि धीरे धीरे अपने मन में भगवतनामोच्चारण करते जावें। अल्पकाल पर्यंत ऐसा करने से तत्काल नींद आ जाती है। कभी कभी ग्रीषमर्तु में सोते सोते निद्रा भंग हो जाती है उस समय इस सुगम युक्ति को काम में लाने से भली भांत निद्रा आ जाती है। उचित है कि उठकर बिछावन को भाड़ देवें और फिर बिछाकर सो रहें। सोने से प्रथम दिशा का ध्यान कर लेना भी लाभशून्य नहीं है। एक माननीय मतिमान ने कहा है कि पश्चिम ओर सिर रखकर शयन करना मन तथा चित्त को कायर करता है और शोकित तथा मलीन बनाता है

उत्तर ओर सिर रखकर सोने से मृत्यु होती है जैसा कि आर्यों के विश्वासनीय पुस्तक से ज्ञात होता है।

जब भगवान शिवजी के निवासस्थान में महात्मा गणेश जी का जन्म हुआ तो सर्व देवता मंगलाचरण तथा जन्मोत्सव करने के लिये परमरम्य कैलाशशिखर पर सुशोभित हुये। परन्तु शनिदेवता का आगमन न हुआ। यद्यपि कि कतिपय बार आह्वान किया गया। परन्तु जब कतिपय देवता बुलाने के लिये गये तब आये। और जब वह लोग नवजात शिशु के देखने के लिये जन्मस्थान में गये तो बालक को शीर्ष विहीन पाया। इस विचित्र बार्ता को अवलोकन कर सब देव अति चमत्कृत हुये और विचार करने लगे परन्तु किसी की बुद्धि में कथित घटना का आभास न हुआ। तब शनिदेवता हाथ जोड़ कर भगवान भूतनाथ के समीप गये और निवेदन किया कि कृपानाथ! यह शोकजनक दुर्घटना ममोपस्थिति कारण हुई है क्योंकि लड़के का सिर उत्तर की ओर था जिस का फल यही होता है। उन्हों ने सम्मति दी कि चतुर्दिक में लोगों को दौड़ना चाहिये। इसलिये कि वह ज्ञात करें कि अपर कश्चित जीव उत्तर सिर किये हुये कहीं सोया है वा नहीं। जब चतुर्दिशा में लोग दौड़े तो उन में से एक व्यक्ति ने आकर यह उत्तर दिया कि अमुक विपिन में एक हस्तिशावक उत्तर की ओर सिर किये हुये सोया पड़ा है। यह सुन कर देवताओं ने वहां पहुंचकर उस का सिर छेदन कर के और उस को लाकर गणेशजी के धड़ पर लगा दिया जिस से वे जी उठे। इस विषय को इस स्थल पर लिपि करने की कश्चित आवश्यकता न थी परन्तु इस में भी एक युक्ति थी अर्थात् जब महात्मा गणेशजी समर्थ हुये तो उन में इतनी विद्या, योग्यता और प्रगल्भता विद्यमान थी कि यदि मनुष्य का सिर होता तो उस के लिये उपयुक्त न होता। इसलिये हस्तिसिर जो सब से वृहत होता है उन के लिये अति आवश्यक था और यह सब देवताओं की अनुकंपा का कारण था कि इतना बड़ा लाभ इसी रीति से उन को उत्तर की ओर सिर रखकर सोने से प्राप्त हुआ।

यवनों को इसलिये पूर्व की ओर सिर रख कर सोना उचित नहीं है कि पश्चिम ओर उन के पूज्यस्थान "काबा" की दिशा को पैर हो जाते हैं। अतएव उचित है कि भारतवर्ष में आर्य वा तो पूर्व की ओर सिर रखकर सोवें अथवा दक्षिण की ओर सिरहना करें और यवन वा तो दक्षिण ओर सिर रखकर सोवें अथवा कहीं अति आवश्यकता हो तो उत्तर की ओर सिरहना करें। क्योंकि एक महाशय का कथन है कि भारत में उस के वंश के लोग उत्तर की ओर सिरहना करके बहुत दिन तक सोते रहे किन्तु उन को कभी भी वैद्यमुखावालोकन की आवश्यकता नहीं हुई अर्थात् सर्वदा निरोग रहे।

कोई कोई मनुष्य जिन को धूमपान का स्वभाव है वह प्रायः गुडगुड़ी की नली को मुख के साथ लगाकर सो रहते हैं। प्रथम तो धूम का पानही करना अति हानिकर है और यदि किया जाय तो ऐसा न करना चाहिये। सोने के प्रथम उस को पृथक रख देना उत्तम है। क्योंकि निद्रितावस्था में नली को झटका लगने से प्रायः वह गिर पड़ती है जिस से चिलम की अग्नि से वा तो वस्त्र इत्यादि भस्म हो जाते हैं अथवा बिछावन में आग लगने से बड़ी हानि होती है।

जो गृह तत्काल का लिपा हो अथवा उस में चूना कली हुई हो और उस की भीतें आर्द्र हों उस में बिछावन रखकर शयन करने से शीत (ज़ोकाम) और कास इत्यादि रोग होते है। इस के अतिरिक्त जहां की पृथ्वी इसी पक्ष की लीपी हो वहां बिछावन रखकर सोने से भी वैसी ही आपत्ति आ घिरती है। वर्षा ऋतु में जब गृह की पृथ्वी आर्द्र हो जाती है तो उस भवन में भी शयन करने से वैसी ही हानि होती है। इस लिये उस भवन के शुष्क होने तक द्वितीय स्थल पर शयन करने का प्रबन्ध करना चाहिये। वर्षा काल में आर्द्र पृथ्वीतल पर लकड़ी जला करके उस को शुष्क कर लेना चाहिये अथवा गृह में ठौर ठौर चूने से भर कर गमले रखने चाहियें। जिससे आर्द्र पृथ्वी शीघ्र शुष्क हो जाती है। यदि किसी प्रयोजन के कारण इन संयमों का आचरण करने पर भी निद्रा न आती हो तो कथित वैद्य से परामर्श लेना समुचित है।

उन्नति करना।

संसार में जितने लोग हैं उन में ऐसा कोई न मिलेगा जिसे अपनी उन्नति की कामना न हो। यद्यपि यह कामना कई प्रकार की होती है परन्तु प्रत्येक दशा में मनुष्य का मन यही चाहता है कि जिस दशा में वह अब है उस से उत्तमावस्था में हो। अतएव यह उपदेश कि मनुष्य को निजोन्नति अवश्यकर्तव्य है मेरे ज्ञान काचित उपदेश नहीं है। हां! यह बतलाना कि उन्नति करने की क्या रीति है निस्सन्देह कार्य्यकर हो सकती है और अवश्य उपयोगी बात है। संसार में यह तो प्रगट है कि प्रत्येक समय परिवर्त्तन दृष्टिगत हुआ करता है। प्रतिक्षण प्रतिपल प्रति घंटा एक२ परमाणु की अवस्था परिवर्त्तित हुआ करती है। जो हम इस समय हैं वही एक पल बरन एक क्षण के उपरान्त नहीं रहेंगे। अतएव जब एक दशा पर हमारी स्थिति असम्भव है तो अवश्य है कि हम किसी समय या तो उन्नति करते हों अथवा अवनति। परन्तु कठिनता यह है कि सदा अपनी दशा का यथावत अनुमान हम स्वयं कथमपि नहीं कर सकते। अतएव जब हम अवनति दशा में होते हैं, अज्ञानता का पटल नेत्रों पर पड़ा रहता है और हमारी दशा प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। उस समय यदि हम उचित बुद्धि दृष्टि से स्वदशा का ज्ञानकर सकें तो इस में कोई सन्देह नहीं कि चित्त का यह दृढ़ कर्तव्य हो जायगा कि अब निजोन्नति करना अति आवश्यक है। केवल यही नहीं बरन एक कठिनता और भी है वह यह है कि उन्नति करने की प्रणाली दुस्तरता से दृष्टिगत होती है। जो कठिनता प्रथम कथन की गई उस का द्वितीय स्वरूप यह है कि हम स्वदशा का असत्य अनुमान करें नष्ट भी होते हों तो समझें कि अच्छे हो हैं और अधोपतन होते हों तो समझें कि ऊर्द्ध्व हो गमन कर रहे हैं।

जैसा ऊपर वर्णन हुआ उन्नति करना प्रत्येक मनुष्य को अभिलषित होता है, अतएव सम्पूर्ण उन्नति विषयक वाक्यों के सार यह दो वाक्य नीचे लिखे जाते हैं—

(१) मनुष्य को समझना चाहिये कि मुझ में अत्यन्त न्यूनता है।

(२) यह हृदय से विश्वास करना चाहिये कि मेरे अतिरिक्त प्रत्येक वस्तुओं में बहुत कुछ है।

यह दोनों वाक्य यद्यपि प्रगट में लघु और चुटकुले ज्ञात होते हैं परन्तु वास्तव में युक्तियों से परिपूर्ण हैं और समझनेवाले के निकट उन में से प्रत्येक सहस्रो उपदेशों का समूह है। यह दोनों वास्तव में इस योग्य हैं कि स्वर्णपानीय से भीतों पर लिख दिये जावें।

अब मैं संक्षेपतया उन की टीका किये देता हूं क्योंकि यद्यपि उस मनुष्य के समीप जिस ने अधिक युक्तियों से अभिज्ञता प्राप्त की है उन में से प्रत्येक वाक्य सतशःवार्ताओं की एक बात है। पर अल्प अभिज्ञ पुरुषों के सन्मुख तो कुछ अनस्पष्ट ही ज्ञात होंगे। मनुष्य को समुचित है कि यह समझे कि मेरे में अत्यन्त न्यूनता है। अर्थात संसार में सहस्रों बातें, सहस्रों भलाइयां, और सतश: विद्यायें अवशिष्ट अथवा पड़ी हैं जिन से मैं अनभिज्ञ हूं। ऐसा समझने से यद्यपि वह समस्त विषयों को जान ले तथापि भविष्यत कामना की गति का अवरोध नहीं होता। क्योंकि मनुष्य की सृष्टि ऐसी है कि उसे निजोन्नति प्रत्येक दशा में वांछनीय होती है। हां! यदि विरुद्ध इस के हमने यह निश्चित कर लिया है कि क्या विषय है जो हमारे में विद्यमान नहीं है तो ईश्वरोवतु। इसी कारण सकल तत्त्वज्ञों और विदुषों ने दीनता अथच नम्रता की प्रशंसा की है और अभिमान को निकृष्ट कथन किया है। अभिमान जहां तक मेरी मति प्रकाश करती है, निज दशा का इस प्रकार असत्य अटकल करना है कि जो हमारे में नहीं है उस का भी अपने में उपस्थित होना अनुमान करें। अभिमान के समान का शब्द दीनता है। इस के अतिरिक्त एक वह दशा है जिस में हम ठीक अनुमान करते हैं कि हम कहां तक हैं। इन तीनों बातों को एक पारसी भाषा के कवि ने छंदबद्ध किया है जिस का भाषानुवाद यह है—

छप्पै—जो नहिं जानै औ जानै मैं जाननवारो।
रहै अज्ञता मांहि सुनौ लौं जगत पसारो॥

जो नर जानें औ जाने मैं जानत ऐसो।
सोउ लँगड़ो खर नियत थान पहुंचावौ कैसो।
पै जे नर जानैं औधहरि औ जानैं जानौं नहीं।
ते निज उमंग वर बाजि को गगनोपरि पहुंचावहीं॥१॥

परंतु दीनता को उस मित से भी रचित रहना चाहिये जिस का परिणाम यह हो जावे कि हम समझ बैठें कि हम किसी योग्य नहीं और न हमारा किया कुछ हो सकता है क्योंकि ऐसा होने से उन्नति की कामना निस्सन्देह नष्ट हो जावेगी।

अब हम अपने द्वितीय वाक्य की टीका करते हैं, यह हृदय से विश्वास करना चाहिये कि मेरे अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु में बहुत कुछ है। चाहे वह वस्तु जीव हो वा निर्जीव, पर्वत हो वा परमाणु, समुद्र हो अथवा बून्द।

यदि हम को यह विश्वास है तो अवश्य हम को उत्तम बात कहीं से मिलेगी और हम उसे ग्रहण करने के लिये क्षत संकल्प अथवा प्रसन्न होंगे। कश्चित मनुष्य यदि मूर्ख भी हो पर प्राय: वह बड़ी बुद्धिमानी की बात कहता है जो बड़े बड़े विद्वानों के मुख से भी नहीं निकलती और यह कहना कदाचित बहुत ठीक नहीं है कि जो मनुष्य आप मार्ग भूला है वह दूसरे को क्या मार्ग बतलावेगा। अब यदि निर्जीव वस्तुओं की ओर दृष्टिपात कीजिये तो संसार में एक एक परमाणु युक्ति की सहस्रश: बातें कह रहा है और विचारशील लोग उस से क्या क्या पाठ नहीं सीखते। इस का विश्वास पूर्ण होना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु से अगणित लाभ हो सकते हैं और जब यह विश्वास हो गया तो यह चिन्ता अवश्य होगी कि इस को किस किस प्रकार से कार्य में परिणत करें और भांति भांति के लाभ उठावें। जैसे यह न समझ लेना चाहिये कि लोहा केवल आयुध बनाने और वस्तुओं को ढालने के लिये ही संसार में सृजित हुआ है। अभी सहस्रों कार्य इस से सिद्ध होते होंगे जिन को हम नहीं जानते। यह ध्यान ऐसा है कि अवश्य उन्नति करने की ओर उत्तेजित करेगा। और एक साधारण

रीति भी बतलावेगा। यह ध्यान कि संसार में सहस्रों वस्तुयें पड़ी हैं जिन को हमने नहीं देखा। हम को देशाटन कर के बुद्धि और उन्नति अर्जन करने के लिये उत्सुक करता है। यह ध्यान कि तुच्छ वस्तुओं में सहस्रों प्रकृतियां हैं, परीक्षा कर कर मनीषा की वृद्धि का कारण होता है। अभिप्राय यह कि व्यवसाय, अध्ययन, कृषिकर्म प्रभृति जितनी बातें हैं सभों में हम को यही ध्यान उत्तेजित करता है और आशा देकर परिणाम में उन्नति का कारण होता है।

—:*:—

मरण।

मनुष्य मरने से ऐसाही भयभीत होते हैं जैसे बालक अन्धकार में जाने से और जैसे कहानी इत्यादि श्रवण कर लड़कों का भय अधिक हो जाता है, वैसे ही मनुष्य का भी। इस में सन्देह नहीं है कि मरण का ध्यान कि इस के पीछे हम दूसरे लोक जायंगे और यह हम को पापों के कारण प्राप्त हुआ मत संबंधी विषय का अन्तःपाती है। परन्तु इस से भयभीत होना हृदय की निर्बलता प्रगट करता है क्योंकि इस से बचना सम्भव नहीं तथापि यथोचरीति से विचार करने में भी कभी कभी अज्ञानता और अन्ध विश्वासता आजाती है। प्रायः धर्मीय पुस्तकों में जहां बुराइयों से बचने का विवरण है यह लिखा है कि किसी मनुष्य की यदि यत्किञ्चित् उस की अंगुली दब जाती है तो कितना क्लेश होता है ऐसेही जब संपूर्ण शरीर का बिगड़ना और खुलना प्रारंभ होता है उस समय के क्लेश का क्या परिमाण होगा प्रत्येक सहृदय अनुमान कर सकता है। यद्यपि कि वास्तव यह है कि किसी समय शारीरिक अवयवों के दुखने से भी कम क्लेश मरण में होता है क्योंकि जिन अवयवों में प्राण रहता है उन में अधिक दुख ज्ञात करने की शक्ति नहीं रहती है।

एक भिषक जो उत्पत्ति के भेद से पूर्ण अभिज्ञ था लिखता है कि हम लोगों को मृत्यु से अधिक मृत्यु का आतंक भयभीत कर देता है।

हाय, और श्वास निकलने के समय की दशा, मुखाकृति का बिगड़ना, रुदन करते हुये मित्र, शोक के परिच्छद, शवयात्रा की रीतियां, अर्थी की बनावट, इत्यादि मृत्यु को भयानक कर देते हैं।

यह बात भी विचारणीय है कि मनुष्य के चित्त में कैसा ही निर्बल और निकृष्ट स्वभाव क्यों न हो मृत्यु के भय पर बलवान हो जाता है। अतएव जब मनुष्य के साथ इतनी रक्षक सेना प्रस्तुत हैं जिन में से प्रत्येक मृत्यु के साथ लड़ सकती है तो मृत्यु ऐसा भयंकर शत्रु कहां है। ध्यान करने की बात है कि बदला मृत्यु पर विजयी हो जाता है, प्रेम इस का ध्यानही नहीं करता, प्रतिष्ठा औ सुख्याति इस की स्पृहा करती हैं। शोक इस के द्वारा शरण की यांचना करता है। भय पहलेही से उस को आता समझ लेता है। केवल इतनाही नहीं, हम ने पढ़ा है कि, जब महाराजाधिराज ओथो ने आत्मघात किया तो शोकित होकर कितने मनुष्य अपने स्वामी के शोकही में यह प्रगट करने के लिये कि हमलोग अकृत्रिम स्वामीभक्त हैं आत्मघात कर के मर गये। इस के अतिरिक्त सनेका ने विशेषाचरण और हर्ष से लिखा है कि "विचार करो कि कितने दिवसों से तुम एकही कार्य करते आये हो, अतएव मरने की कामना केवल शोकित और शूरमाही की नहीं होती बरन वह लोग भी मरना चाहते हैं जो एकही कार्य करतेकरते आप्यायित हो गये हों और अन्य सामान्य कार्य अथच घटनाओं से उन का चित्त प्रसन्न नहीं होता हो अर्थात् मनुष्य को केवल शोकित और शूर होने के कारणही मरना स्पृहणीय नहीं होता बरन इस कारण से भी कि वह एकही कार्य करते करते थक गया हो"। इस के व्यतीत एक यह विषय भी विचारणीय है कि मृत्यु का आगमन मनुष्य के हृदय में अतिअल्प अन्तर कर देता है। महाराज अगस्टस सीज़र ने मरते समय प्रशंसा की, ईश्वररक्षक लो हमलोगों के हर्ष अथवा उत्कर्ष को न भूलना। टासटिस ने लिपिबद्ध किया है कि टासरीस ने मरणकाल पर्यंत छल का त्याग न किया "टासरीस की शक्ति का ह्रास होता जाता था, विशेष जीवन का मार्ग भी

कटता जाता था परन्तु उस का छद्म न गया"। एसीरियन ने परिहास किया "मैं समझता हूं कि अब मैं देवता ही जाऊंगा"।

गलबा ने मरते समय अपनी ग्रीवा उठाई और कहा कि "मारो यदि इस से हम निवासियों का कुछ भला हो सके"। सिवरस ने जिन कार्य की पूर्ति का ध्यान रखा। "सावधान हो जाव, मेरे लिये अपर कश्चित कार्य शेष तो नहीं है"। इस में सन्देह नहीं कि स्टोइक लोगों ने मृत्यु की अपरिमाण वृद्धि कर दिया और इस के लिये बड़ा बड़ा सामान कर के इस को और भी भयानक कर दिया। जुविनल ने अच्छा कहा है "जो जीवन के समाप्त होने को एक बड़ा प्रसाद समझते हैं"। मरना और जनमना दोनों समान है और अल्पवयस्क बालक के लिये कदाचित दोनों में समान क्लेश होता है। जो मनुष्य किसी कार्य में उमंग और उत्साह से लगा हुआ मर जाता है तो वह मानों संग्राम में मरा और उस समय उस को उस का आघात नहीं ज्ञात होता। इसी कारण से यदि चित्त किसी कार्य की ओर प्रवृत्त रहे तो मृत्यु के कतिपय क्लेशों को शमन कर सकता है। परन्तु स्मरण रखो कि सर्वोत्तम बात यह है कि जब कश्चित व्यक्ति कश्चित महतकार्य को सम्पादन कर चुके और बड़ी आशायें प्राप्त हो जावें तो संसार से बिदा की कामना करे।

मृत्यु में एक बात यह भी है कि इस से सुख्याति का द्वार खुल जाता है और ईर्षा का दीपक शांत हो जाता है "आज इस को मरने दो तुम कल्ह प्रीति करोगे"।

—o—

धन की कामना किस अभिप्राय से होनी चाहिये।

धन की कामना सुगम है, मिलना भी बहुत कठिन नहीं पर उस के उचित रीति से काम में लाने की युक्ति जानना बहुत कठिन है। धनवान की परिभाषा जहां तक मेरी अल्पमति में आती है यह होगी कि धनवान वह मनुष्य है जिस की सामग्री उस के प्रयोजन से अधिक

है। अतएव सर्वोत्तम बात यही है कि मनुष्य के मनोरथ कम हों, और यदि उस को अभिलाषा कुछ नहीं है फिर तो यदि पैर में पादत्राण तक नहीं है तो भी वह धनवान है। प्रायः महानों ने जो कहा है कि धन को वासना कभी निर्दोष नहीं है वह ठीक है क्योंकि अधिकतर लोग धन इसी लिये चाहते हैं और यही उस का व्यापार समझते हैं कि नृत्य कौतुक इत्यादि देखें, स्वादिष्ट भोजन खावें, और स्वयं परिश्रम न करें। यह भी बहुत सत्य है कि धन किसी के पास तभी आ सकता है जब कि दूसरा क्षतिग्रस्त हो। और यह बात कैसी होगी कि हम अपने लाभ के लिये दूसरे को क्षति को करणीय समझें, केवल इस कामना से कि हम स्वादिष्ट भोजन करें, परिश्रम न करें, और सुख पूर्वक कालयापन करें। एक मतिमान का कथन है कि "धन नीति के लिये यात्रा को गठरी है" अर्थात् धन के कारण नीति में वही अवरोध होता है जो गठरी ढानेवाले पथिक को मार्ग चलने में।

अब ऊर्द्धलिखित लेख से धनिकों को व्यग्र न होना चाहिये, उन के लिये एक ऐसा द्वार खुला है, जिस के समीप साधकों की तो क्या सिद्धों को भी फटकने को शक्ति नहीं और यदि वह उस द्वार की रक्षा करें तो लोक परलोक दोनों में भलाई हो सकती है। वह ऐसा पदार्थ है जो केवल धनिकों के हस्तगत है और जो केवल एकही मार्ग है, जिस पर चलकर फिर धन को कामना सर्वथा दोषरहित और सत्कर्मों को उत्पादक है। मनुष्य संसार में दूसरे की भलाई चाहता है अथवा बुराई को कामना करता है। बुराई के लिये इतनाही बहुत कुछ है कि हम किसी का बुरा न चाहें परन्तु भलाई के लिये यह कुछ भी नहीं कि किसी का भला चाहें जब तक कि जो हम को अभिलषित है उस के निमित्त कर न दें। सहस्रों संसार के हितैषी और सतशः दिलोदानी अपनी श्लाघा को समाधि में लेगये अथवा निज शरीर के साथ चिता पर दग्ध कर दिया और उन का होना न होना हमारे निकट समान हुआ। कितने लोगों ने कितनी सांसारिक उपयोगी बातें सोचीं पर केवल सोचना ही सोचना

होंय रहीं संसार का उपकार कुछ भी न करसके, बरन उन को अनाथा यह रंग लाई कि आगामि आशाओं का भी नाश हुआ। केवल धन और मुद्रा न होने से उन से संसार लाभ न उठा सका। यदि उन के पास धन होता तो न जानें किन किन अभिलाषाओं को पूर्ण कर के वह संसार को लाभ प्रदान किये होतें। केवल धन एक उत्तम द्वारा है जिस के सम्बन्ध से मनुष्य जो चाहे औरों से अधिक कर लेने का अधिकार रख सकता है। अतएव जो धन को दूसरों की कामना पूर्ण करने में संसार को लाभ पहुंचाने में और उत्तम कार्यों के सम्पादन करनें में व्यय करता है अथवा धन को इन सत्कर्मों का द्वारा बनाता है, निस्सन्देह वह धन को उचित कार्य में व्यय करता है और दोष रहित है।

तैरना।

जलतरण से अभिज्ञता रखने के लाभ अधिक हैं परन्तु मनुष्य के लिये यह कला ऐसी है कि बिना सीखे नहीं आ सकती। अपर जीव-धारी जल में सुगमता से तैर सकते हैं परन्तु मनुष्य को सब से अधिक असमंजस सिर को जलबाह्य रखने में होता है और यदि यह न होसका तो प्रियप्राण से हस्ताकर्षण करना पड़ता है। मनुष्य के सिर का शारीरिक अपर अवयवों से गुरु होना (जिस के कारण उस को अपर जीवों से उत्कृष्टता है) उसे जल में लज्जित करता है। यदि यह संभव होता कि हमलोग मछलियों के समान जल में भी स्वास ले सकते तो तैरना अति सुगम बात थी। मनुष्य का सम्पूर्ण शरीर जल से निस्सन्देह हलका है किन्तु यह हलकापन किस काम का जब स्वास लेने में आपत्ति है। हमारे उक्त वर्णन की सत्यता इस परीक्षा से हो सकती है। एक आध मिनट तक तो सब लोग स्वास रोक सकते हैं अतएव परीक्षा के लिये किसी थाह जलाशय में कर द्वारा नासिका बंद कर सिर डुबा कर पद को तल की ओर उठाओ तो स्पष्ट तैरने लगोगे, जो यह बात साव्यस्त कर देता है कि मनुष्य का समग्र शरीर जल से कुछ हलका है।

जीवन में प्रायः नौका पर चढ़ने का संयोग होता है अतएव कौन जानता है कि किस समय क्या आन पड़े। यदि जलतरण का थोड़ा भी अभ्यास है तो यह तो होगा कि जब तक लोग सहायता के लिये आवें हम अपनी रक्षा के लिये आप उद्योग करेंगे। इस के अतिरिक्त कौन ऐसा होगा जो कभी नदी अथवा सरोवर में स्नानार्थ न उतरा हो अतएव यदि संयोग से अगाध जल में जा रहे और तैरने से अनभिज्ञ है तो क्या गति होगी—और स्नान की उपयोगिता तो किसी पर अप्रगट नहीं मुख्यतः भारत ऐसे प्रदेश में तो सदा स्नान करना समुचित है। स्नान के लाभ विद्या द्वारा इस प्रकार वर्णन किये जा सकते हैं। जैसे वृक्ष के पत्तों में अति सूक्ष्म २ छिद्र (जो सूक्ष्मदर्शक यंत्र से ज्ञात हो सकते है) इस प्रयोजन से होते हैं कि अप्रयोजनीय जल उन के मार्ग से बाहर निकल कर वाष्प होता जाय, इसी भांति जीवधारियों के शरीर में भी रोंगटों की जड़ में बहुत छोटे छोटे छिद्र होते हैं जिन के मार्ग से व्यर्थ सत्व और निरर्थ वस्तुकण बाहर निकलते हैं। यदि शरीर स्वच्छ अथच निर्मल न रखा जाय तो मैल एकत्रित हो कर उन मार्गों को बन्द कर देगी और आरोग्यता में व्याघात होगा। इस लिये स्नान करना उपयोगी निश्चित किया गया है। और आर्य्यों के मत में (जिस का मुख्य भाग विचार से देखा जाय तो सर्वथा आरोग्यता के सिद्धांत पर निश्चित कियागया है) नित्य धर्म के कार्यों में स्नान करना प्रथम कर्म है। शीतल जल से जो शक्ति और आनन्द शरीर को प्राप्त होता है उस का साक्षी केवल मुख और हाथ का धोलेना है। कैसे हो मार्ग से श्रांत हो अथवा परिश्रम से चित्त स्थकित होगया हो शीतल जल का स्वरूप अवलोकन करते ही दुख मिट जाता है

प्रथम तो शीतल जल में पैठते ही हृदय पर एक धक्कासा लगता है और शरीर के बाहरी भागों से रुधिर मध्य के भागों की ओर भ्रमण करता है। परन्तु बहुत शीघ्र यह गति परिवर्तित हो जाती है और रुधिर का भ्रमण बड़े वेग से शरीर के भागों में होने लगता है और यदि तैरना प्रारंभ कर दिया जावे तो इस कार्य में वह और भी

सहायता करता है। जब यह बात होती है तो अति शीतल जल में भी शरीर पर इस प्रकार की उष्णता का प्रभाव होता है जो परमानंद जनक होता है। चित को अवशकरते जल में अतिकाल पर्यंत न रहना चाहिये क्योंकि यह विषय हानिजनक होता है। चित्त को ज्यों ही तृप्ति प्राप्त हो, यदि उस समय जल से बाहर निकल कर शरीर पोंछ डाला जाय तो सर्वशरीर पर एक अद्भुत प्रकार की शोभा और कान्ति प्रगट होती है यदि अभिलाषा से अधिक जल में विद्यमान रहें तो निकलने पर शरीर का मांस सर्व ओर से खिंचा हुआ और चमड़ा सिकुड़ा हुआ दृष्टिगत होगा जो आरोग्यता के लिये अत्यंत हानिकर होता है।

जलतरण के लिये कतिपय बचाव आवश्यक हैं। खाने के उपरांत ही जल में कूद कर तैरना आरोग्यता में अंतर उत्पन्न करता है और वैसा ही उस समय भी अनिष्ट है जब कि भोजित वस्तु उदर में पच रही हो। जिस दशा में कि शरीर अकस्मात उष्ण होगया हो जल में न प्रवेश करना चाहिये और जब शरीर से प्रस्वेद निकल रहा हो उस समय भी तैरने से रुक रहे। इन दशाओं के अतिरिक्त और भी जब कभी चित्त थोड़ा भी जल से घृणा करे तो तैरने के लिये उद्युक्त न हो। यदि इन विषयों का ध्यान न किया जाय तो बहुधा अत्यंत बुरे फल और कड़ी मांदगियां होती हैं।

जैसा ऊपर वर्णन हुआ भोजन करने उपरांत जलतरण से दूर रहना समुचित है। अतएव सामान्यत: मध्य दिवस के कतिपय घंटे प्रथम अथवा पश्चात तैरने का समय निर्धारण किया जा सकता है। कड़ी धूप में तैरना समुचित नहीं वरन यदि हो सके तो तप्तकुण्ड (हम्माम) में स्नान करे दो पहर के समय यदि बाहर तैरे भी तो उचित है कि सिर को प्रत्येक समय जल से आर्द्र रखे इस लिये कि सूर्य के उत्ताप का अधिक प्रभाव न हो।

तरण के लिये समुद्र सर्वोत्तम है क्योंकि समुद्र का जल नदी अथवा सरोवर के जल से गुरु होता है, जिस का कारण लवण के अधिकांश

का उस में उपस्थित रहना है। अतएव समुद्र में तैरते समय नदी अथवा सरोवर में तैरने की अपेक्षा अधिक सुगमता होती है। जो लोग नौकारूढ़ हुये हैं इस विषय को भलीभांति जानते होंगे कि जब नौका कथित नदी में आती है तो जल में अधिक निमग्न हो जाती अथवा बैठ जाती है। जिस का कारण यही है कि समुद्र में किसी पदार्थ का तैरना नदी की अपेक्षा सुगम है। जिस जल में तरण की कामना हो उचित है कि तल पर कड़ी बालू अथवा समान धरातल की चिकनी मृत्तिका हो। जहां कंकड़ पत्थर घोंघे अधिक होंगे चरण में चोट लग जाने की आशंका और सिवार में पैर फंस जाने का भय है। अतएव तैराक को चाहिये कि जलीय वृक्षों की ओर न प्रवेश करे। जो मनुष्य जलतरण की विद्या सीखता हो उस को उचित है कि प्रथम जल में वहीं तक जावे जहां तक वह खड़े २ जा सकता है और ऐसी ठौर न जाय जहां से पानी की भंवर अगाध जल में अथवा वहां ले जा सके जहां पृथ्वी में गर्त अथवा कूप हों। और यतः जल में प्रायः भय रहता है अतएव सीखनेवाले को योग्य है कि प्रथम उन लोगों के साथ तैरे जो सीखे सिखाये हों इस निमित्त कि आवश्यकता के समय वे उस को सहायता कर सकें।

इतिहासपठन के लाभ।

भारत में अधिक लोगों का यह अज्ञान अद्यापि बना हुआ है कि राजकीय पाठशालाओं में इतिहास पढ़ाना सर्वथा निष्फल और छात्रों के समय का नष्ट करना है। अतश्च मनुष्य सर्वदा इस विद्या की निन्दा करते हैं, कि विद्यार्थियों का अधिक समय तो व्यर्थ विषयों में नष्ट हो जाता है और उस का परिणाम कुछ नहीं होता। इस में कुछ संदेह नहीं कि इस का फल प्रत्येक मनुष्य को उत्तम नहीं मिलता, और भारत के बहुतेरे विद्यार्थियों को यह सब पढ़ाना और न पढ़ाना समान है परन्तु शिक्षा की प्रणाली तो इसी लिये प्रचलित होती है

कि जो प्रयोजन इस से है प्रत्येक मनुष्य के लिये पूरा हो सके। फिर यदि हम स्व: उन को न प्राप्त करें तो किस का दोष है। यदि लोमड़ी के मुख तक न पहुँचे तो क्या अवश्य है कि दाखही अम्ल हों। यह कौन कथन करता है कि जो शिक्षाप्रणाली इस समय पाठशालओं में प्रचलित है उस में कञ्चित अवगुण नहीं, परन्तु यह प्रलाप करना कि इतिहास प्रभृति का पठन निरर्थ है, महाभ्रम है। हम प्रश्न करते हैं कि क्या बहुत से महाशय यह नहीं कथन करते कि रेखागणित का पठन निष्फल है, अब उन की अल्पज्ञता को क्या कहा जाय। केवल इस का कारण यही है कि वह उस श्रेणी पर्यन्त विद्याअर्जन ही नहीं करते जिस में उन को इस विद्या का गुणज्ञात हो। गणित की जितनी उच्चतम शाखायें हैं सबों की मुख्यजड़ रेखागणित है। बरन यों कथन करना चाहिये कि गणित की भाषा के लिये रेखागणित वर्णमाला है और ऐसेही यह भी समझलेना चाहिये कि देशीय प्रबन्ध, दूरदर्शिता अथवा प्रबन्ध, जातीयउन्नति प्रभृति के लिये इतिहास जानना अति आवश्यक है। सामान्यजनों ने इतिहास से यही प्रयोजन समझ रखा है कि सहस्रों विख्यात घटनाओंके समय स्मरण कर लिये अतश: संग्रामीय स्थानों को कंठाग्रकरलिया बस हो चुका। परन्तु इतिहास की विद्या एक अमूल्य वस्तु है। जो इन सब बखेड़ों से रहित है और जो तभी हस्तगत हो सकती है जब मनुष्य अपने वय का अधिक भाग उस के पीछे व्यय करे।

अब हम संक्षेपतः निज पाठकों पर प्रगट करते हैं कि इतिहास विद्या के क्या लाभ हैं जिस से यह भी प्रतिपन्न होगा कि जो लोग थोड़ी सी शिक्षा पाते और उन विषयों के अन्तिम मनोर्थ से जो उन को प्रारम्भ कराया गया था अनमोर्थ रह जाते हैं वे इस विद्या की निन्दा केवल इसी कारण से करते हैं कि "अपूर्ण वैद्य से जीव का भय और अप्रगल्भ पण्डित से धर्मनाश की आशंका है"।

सब से प्रगट लाभ तो यह है कि इस विद्या का ज्ञाता दश मनुष्यों में अथवा समाज में परिभाषण और वार्तालाप में चालाक, मतिमान,

अभिज्ञ और जानकार समझा जा सकता है। उस की बात अतएव बातों में अद्वितीय समझी जायगी, और यदि वह जान बूझ कर कोई असत्य बात भी कहना चाहे तो इस रीति से कह सकता है कि जिस से लोगों में उस की उत्तमता प्राप्त हो। परन्तु यह लाभ अपर लाभों के सन्मुख कुछ भी नहीं है और इस मौखिक वाक्पटुता के लिये कोई अपना अनमोल समय नष्ट करना भी उत्तम न समझेगा। सर्वोत्कृष्ट लाभ इस विद्या से जानकारी अथवा अभिज्ञता है। अर्थात् यह जानना कि पहले समय की क्या दशा थी, अब क्या है, और इन दोनों में कौन उत्तम है। अपर जीवधारी अथवा पशु केवल अपनी वर्त्तमान दशा की चिन्ता करते हैं और जिस विषय का संचार उन के हृदय में हुआ तत्काल कर बैठने का उद्योग करते हैं। परन्तु मनुष्य प्रत्येक कार्य को सोच विचार कर करता है और यह भी निश्चित कर लेता है कि यदि पहले यह कार्य किया गया था तो उस का परिणाम क्या हुआ। मनुष्य को अपर जीवों से इसी कारण उत्कृष्टता प्राप्त है कि वह जान सकता है कि प्रथम में किस दशा में था किन्तु गो वृषभादि अपनी प्राचीन दशा भूल जाते हैं। आगामि की व्यवस्था न तो मनुष्य जान सकता है और न अपर जीव, और वर्त्तमान दशा की चिन्ता दोनों को समानही रहती है। फिर यदि अपनी व्यतीत अवस्था मनुष्य स्मरण न करे और परीक्षा से कार्य न ले तो उस में और अपर जन्तुओं में क्या अन्तर है। अब यदि कोई यह प्रश्न करे कि इस जानने से क्या लाभ, कहावत प्रसिद्ध है कि 'जो बात बीतगयी उस की क्या चर्चा' तो हम कहेंगे कि निस्सन्देह लाभ है। इसी ग्रन्थ में मैं एकलेख उन्नति विषयक लिख चुका हूं जिस में यह भली भांति वर्णित हुआ है कि मनुष्य सदैव उन्नति करना चाहता है परन्तु केवल उस को इतनी कठिनता पड़ती है कि सुगमता से उस को यह बात नहीं ज्ञात होती कि वह उन्नति कर रहा है अथवा नहीं। और यदि मनुष्य को इतनाही ज्ञात हो जाय कि मैं अवनति दशांतःपाती हूं तो इस में क्या सन्देह है कि वह निजोन्नति आकांक्षी न हो। इस विषय को स्पष्टतया उस लेख में प्रतिपन्न कर दिया था

अब मैं पूछता हूं कि यदि हम अवनति दशांतःपाती हैं तो इस बात को सूचना हम को इतिहास विद्या के अतिरिक्त और कहां से मिल सकती है जो हमारी उन्नति का कारण हो।

इंगलिस्तान के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रचयिता लार्ड बेकन ने जो लेख अध्ययन पर लिखा है उस में वर्णन किया है कि विद्योपार्जन तीन हेतु से होता है। अभिज्ञता, मनामोद, और लोगों के दिखलाने के लिये। अब यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो कथित तीनों प्रयोजन अतीव उत्तम रीति से इतिहासही से प्राप्त होते हैं। अभिज्ञता की व्यवस्था तो ऊपर लिपिबद्ध हो चुकी है, और यह भी वर्णित हुआ है कि इतिहासवेत्ता दश मनुष्यों में अपने को चतुर और सुपरीक्षक दरसा सकता है। फिर मनामोद के लिये भी इतिहास विद्या सच्चे गुणज्ञ के लिये क्या कम है। क्या असत्य निर्मूल कहानियों से इस में अधिक आनन्द नहीं और क्या अत्युक्ति और बनावट भरे हुये दोहों और कवित्तों के पठन से इस में विशेष लाभ नहीं।

इस में संदेह नहीं कि इतिहास से किसी एक मुख्य मनुष्य की दशा की उन्नति अथवा अवनति ज्ञात नहीं हो सकती। परन्तु संपूर्ण जाति की भूत और वर्तमान कालिक व्यवस्था मतिमानों को इस के द्वारा ज्ञात हो सकती है और वह उस के अनुसार व्यवहार कर सकते हैं। साधारण लोग रेलगाड़ी, भांति भांति के कल, वैद्युतीय तार, इत्यादि देखकर समझते हैं कि अहा! भारत के कैसे दिन आये हैं, पर जो लोग वर्त्तमान और भूतकाल दोनों की दशाओं को बिचार की दृष्टि से अवलोकन करते हैं उन्हें अहर्निशि यह ध्यान बंना रहता है, कि देश का अध्यवसाय, अथच, व्यवसाय बन्द हो रहा है वा नहीं, और अकिञ्चनजनों की दशा पहले कैसी थी और अब कैसी है। यह बात इतिहासही से जानी गई है कि किसी मुख्य भेद की युक्ति से किसी जाति को किन बातों की हानि अथवा लाभ होने की सम्भावना है और यह भी प्रगट हो सकता है कि अमुक प्रकार की युक्तियों ने अन्त में क्या फल उत्पादन किये। क्या मनुष्य का यह कर्तव्य नहीं है कि प्रत्येक

पुरुष अपनी उत्तमता को समग्र जाति की उत्तमता का एक भाग समझ कर जातीय उन्नति के विषय में उद्योग करे। और जहां तक बन पड़े वह चालचले जिस से समस्त जाति का भला हो। यदि है तो हमारी युक्तियों के लिये इतिहास विद्या के अतिरिक्त और कौन मार्ग बतला सकता है।

इतिहास विद्या का संचिप्त यह होना चाहिये कि अमुक नृपति ने अमुक जाति को किस प्रकार बिजित किया, किस युक्ति से लोगों को परास्त किया। और किस चाल से उस का राज्य इतने दिनों तक स्थिर रहा। अमुक राज्य के विनाश के क्या क्या कारण हुये और क्या क्या चिन्ह और कौन कौन लक्षण उस के नष्ट के प्रथम से प्रगट हुये किस रीति से उन का संशोधन अथवा संरक्षण हो सकता था और न हुआ। जो जो महानजन हुये उन के ढंग, रहन और आचरण ने समय पर किस प्रकार का प्रभाव उत्पादन किया और समय ने उन के साथ उस का क्या प्रतिकार किया।

इन्हीं लाभों की दृष्टि से प्रत्येक ठौर उच्च श्रेणियों में इतिहास विद्या के साथ देशीय मितव्ययिता की युक्ति की विद्या भी पढ़ाई जाती है और जो लोग देशहितैषी हैं उन्हीं को इतिहास विद्या का गुण जान पड़ता है।

—o—

गणितज्ञता के लाभ।

प्रायः आलसी छात्र जो गणित समझने का उद्योग नहीं करते यों कहा करते हैं कि गणित पढ़ने से क्या लाभ है और पाठशाला से बाहर इस की आवश्यकता कहां होती है। बीजगणित के उदाहरण और रेखागणित के प्रश्न राजकीय कार्यालयों में किसी समय कार्य में परिणत नहीं हो सकते। गणित में व्याज निकालने की उपयोगिता का ज्ञान ऐसे मनुष्य के लिये जो महाजनी नहीं करता है सर्वथा अनोपयोगी है। रेखागणित की कथित साध्य कहीं कार्य में नहीं लाई जा

सकती है। इस में संदेह नहीं कि पहले अध्याय की अड़तालीसवीं साध्य जिस को साध्य (अरूनो) कहते हैं शिविर अथवा डेरा बनाने-वालों के उपयोगी है। परन्तु प्रगट है कि सिविरनिर्मता बिना रेखा-गणित जाने हुये निज कार्य को भली भांति सुसम्पन्न कर सकता है और पाठशाला के शिक्षित लोग चार अध्याय रेखागणित जानने पर भी शिविर निर्माण करना किञ्चित भी नहीं समझते। इस से प्रतिपन्न हुआ कि यहां भी गणित जानने की कुछ आवश्यकता नहीं है। संसार में ऐसा कश्चित व्यवसाय दृष्टिगत नहीं होता जिस में बीजगणित की सहायता से कश्चित कार्य सम्पन्न हो सके।

जब गणित के आदि के भागों की जो सुगमतया छात्रों को अव गत हो सकते हैं यह दशा है, तो उच्चश्रेणी का गणित जैसे विभक्त गणित इत्यादि पठन करना सर्वथा समय नष्ट करना हुआ। ऐसी ऐसी बातें हमने लड़कों ही की जिह्वा से नहीं बरन प्रायः ऐसे लोगों से भी सुनी हैं जिन की गणना बालकों में कदापि नहीं हो सकती है।

परन्तु जानना चाहिये कि यह सर्वथा अनभिज्ञता है हम गणित के लाभ वर्णन करके साव्यस्त करेंगे कि गणित न समझना इस के कठिन होने का प्रमाण कदापि नहीं है बरन उन लोगों का आलस्य प्रगट करता है जो इस विषय का उद्योग नहीं करते। बालकों की शिक्षा में सर्वोत्तम भाग गणितपुस्तकाध्ययन कराना है। इस से कोई यह न समझे कि केवल पहाड़ा इत्यादि का कण्ठस्थ करा देना उपयुक्त है, क्योंकि इतना कथन करने ही से गणित विद्या के शेष भागों का निष्-प्रयोजन होना सिद्ध हो जायगा।

गणित विद्या जितना ही अधिक जानने का उद्योग किया जाय उत्तम है। इस के लाभ, आदि में सामान्यतया प्रगट नहीं हैं। भारत में मूर्खता के कारण गणित के सहस्रों लाभ निस्सन्देह व्यर्थ और निष्प्रयोजन हो जाते हैं। परन्तु यह संभव नहीं है कि गणितपठन का प्रभाव हृदय पर न हो। हम इस बात को सिद्ध करेंगे कि गणित का व्यवहार पूर्णतया न होने पर भी यह प्रभाव अतिशय उपयोगी है और जब व्यवहार

करना भी आ जाय उस समय भारतनिवासी संसार की सभ्य जातियों की समानता करेंगे।

गणित वह विद्या है जिस में परिमाण और अंकों अथवा रेखाओं द्वारा वाद वा विवाद किया जाता है। इस का अभिप्राय यह है कि जैसे न्यायशास्त्र में विवाद करने के लिये कुछ बातें कल्पित होती हैं और कुछ बातों को सिद्ध करना अभिलषित होता है वैसेही गणित में रहता है इस के लाभ बहुत से हैं यह लाभ मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं जैसा कि हम ने ऊपर वर्णन किया है। पहले वह हैं जो केवल हृदय पर प्रभाव उत्पन्न होने से होते हैं और दूसरे वह जो गणित की रीतियों को कार्य में परिणत करने से होंगे। प्रगट है कि दूसरे प्रकार के लाभ अधिकतर उन्हीं लोगों की समझ में आवेंगे जो किसी प्रकार की विद्या भलीभांति जानते होंगे। इसी कारण से पहले हम इन्हीं लाभों की चर्चा करेंगे जिन के लिये विद्या जानने की आवश्यकता नहीं है। इन लाभों को पृथक पृथक क्रमशः हम इस प्रकार वर्णन करते हैं।

जिस मनुष्य ने बीजगणित अथवा रेखागणित कुछ भी पढ़ा है, उसे भली भांति अवगत है कि गणित में कथित विषय अप्रमाण नहीं होता। जब तक प्रत्येक तर्कों का समाधान नहीं होता तब तक कथित रीति अथवा कथित साध्य का अवबोध न होगा। बाल्यावस्था से बार बार इस प्रकार समझने की प्रकृति डालने का यह फल होता है कि प्रत्येक वस्तु को विचारदृष्टि से देखने की प्रकृति पड़ी रहती है। गणितज्ञ स्थूल विषय को भी सामान्य दृष्टि से न देखेगा क्योंकि इस की प्रकृति शिक्षा के विपरीत है। आदि से ऐसी बातों का ध्यान इस के हृदय में रहता है। जिन के सत्य होने में कथमपि सन्देह नहीं है और जिन की सत्यता प्रमाणों से सिद्ध हो सकती है। यह प्रमाण भी ऐसे हैं कि इन को कोई किसी भांति अप्रमाण सिद्ध नहीं कर सकता है। गणित की अतिशय कठिन बातों जिस के समझ में आगई हैं और जिस ने अपना

ध्यान एकत्र और विद्या की रीतियों को सम्पादन (हल) किया है वह संसार के जाल और भ्रम में कम पड़ेगा। और कम छला जावेगा।

केवल गणित एक विद्या है जिस में भूल कदापि नहीं हो सकती। संसार में जितनी विद्या है सब में परामर्श का अधिकार है, प्रायः प्रत्येक पर अनुमान का प्रभाव हो सकता है, प्रत्येक मनुष्य के हृदय के अनुसार इस पर सम्मति निर्धारण होना सम्भव है। परन्तु यह ऐसी विद्या है कि यहां इन सब का प्रवेश ही नहीं और जो कि विद्या जानने का प्रयोजन केवल यही है कि अधिकतर सत्य बातें ज्ञात हों। अतएव प्रगट है कि गणितज्ञ को जितनी बातें ज्ञात होंगी सब बहुत ठीक और तथ्य होंगी। इस ठौर केवल उन सिद्धान्तों का ठीक होना प्रगट करते हैं उपयोगी होना इस के उपरान्त लिखेंगे।

गणितपठन से मनुष्य के हृदय में प्रत्येक समय ठीक रीति से शास्त्रार्थ अथवा विवाद करने का सत्व उपस्थित रहता है और बालावस्था से इस विद्या की शिक्षा होने से सदा के लिये इस बात की प्रकृति पड़ जायगी। कामकाजू मनुष्य के लिये जिन उपदेशों को इंगलिस्तान के भिषक सर आर्थरहेल्पस ने लिखा है उन में स्पष्टतया लिख दिया है कि यतः यह बात अवश्य है कि मनुष्य कुछ तर्क वितर्क करना जाने अतएव सर्वोत्तम रीति इस विषय के सीखने की यही है कि रेखागणित पढ़ें।

गणितज्ञता से मनुष्य के हृदय से बहुत सी निर्बल विश्वास की बातें जाती रहती हैं। क्योंकि गणितज्ञ ऐसी बातों का विश्वास कदापि न करेगा जब तक उन का मूल न जानलेगा। इस से मत का बड़ा लाभ होता है यद्यपि कि लोग यह समझते हैं कि गणितपठन से मत (मज़हब) की हानि होती है। परंतु यह उन की बड़ी भारी भूल है। प्रगट है कि मत में प्रत्येक मनुष्य जानता है कि ठीक और उचित बातें होती हैं। अतएव लोगों की मूर्खता से जो अशुद्धियां इस में होती हैं वह सब निवृत्त हो जायंगी यदि लोग उन को बुद्धि की दृष्टि से देखेंगे। इस में यह प्रश्न हो सकता है कि बुरे मनुष्य चाहे उन को कितनीही [illegible] अपनी लड़ाई को नहीं छोड़ सकते। परन्तु यह बात

निर्मूल है। संसार में कश्चित व्यक्ति ऐसा नहीं है जो अपने उत्तम अथवा असत कार्य के लिये अपने और दूसरे के समझाने के निमित्त अतर्क्य और अश्लाघ्य कारण पास न रखता हो और प्रश्न करने पर प्रमाण न दे। वह प्रमाण अधिकतर निर्मूल होते हैं। इस से सिद्ध है कि सतश: मनुष्य ऐसे हैं जिन को समझ होने से ऐसे कार्यों से ग्लानि हो जायगी जब वह अपनी भूल को विचारेंगे। सहस्र बार उपदेश करने का इतना फल न होगा जितना कि इस युक्ति से होना संभव है। क्योंकि उपदेश किसी किसी समय तुम को बहुत बुरा जान पड़ता है और जब मनुष्य के हृदय में ऐसी शक्ति उत्पन्न कर दी गई जिस से कि वह आप वस्तु को बुराई जान सके। तो अवश्य है कि वह आप उस से किनारा करने का उद्योग करेगा। यह युक्ति वैसेही है, जैसे कि कोई बालक अग्नि में हस्तक्षेप करना चाहे, संभव है कि प्राय: दुराग्रही लड़के निषेध करने से न मानें। परन्तु जब उस को आंच लगेगी वह तत्काल स्वयमेव हाथ हटा लेगा।

जितनी विज्ञानविद्या हैं उन में कश्चित ऐसी नहीं है जिस में गणित की आवश्यकता न होती हो। इंगलिस्तान के प्रसिद्ध ज्योतिषी सरजान हरशल महाशय ने लिखा है कि केवल गणित एक विद्या है जिस की सहायता न होने से कश्चित विज्ञानविद्या समझना असंभव है। तत्वविद्या, ज्योतिषविद्या, खगोलविद्या, शब्दविद्या, प्रकाशविद्या प्रभृति प्रत्येक विद्या में गणित जानने की बड़ी आवश्यकता है।

रेखागणित के लाभ भी गणित की भांति विशेष हैं, गणितविद्या में यह विद्या बहुत काम आती है, वर्गमूल की रीति के बहुत से प्रश्न बिना रेखागणित की विज्ञता के हृदयस्थ नहीं होते और त्रैराशिक की रीति, व्याज और हानिवृद्धि व साझा, मितीकाटा और नोट इत्यादि में भी वह बरता जाता है, उस को मुख्यता रेखागणित को सोलहवीं साध्य षष्ठ अध्याय से हृदयङ्गम और प्रगट होती है।

बीजगणित में गुणक रूप अवयव की रीति के प्राय: प्रश्न की व्यवस्था रेखागणित द्वारा प्रगट होती है और गुणक रूप अवयव की आवश्यकता

और कतिपय रीतियों में पड़ती है, और अनुपात के असंख्य प्रश्न भी रेखागणित पर निर्भर हैं।

क्षेत्रविद्या अथवा मापविद्या में यदि, घनगोले इत्यादि को पिण्डों को और त्रिभुज औ वृत्त प्रभृति क्षेत्रों के क्षेत्रफल ज्ञात करने की रीतियों की वास्तवता इसी विद्या पर निर्भर है।

त्रिकोणमिति में और त्रिभुज के सम्बन्धों की विद्या और सिद्धांतीय साध्यों और त्रिभुजसिद्ध (हल) का भार इस विद्या पर है और नदियों के पाट और कूपों और हस्त स्तंभों (मीनारों) की गहराई और उंचाई और जिन वस्तुओं तक हम पहुंच नहीं सकते उन में अंतर निर्धारण करने के लिये यह विद्या अत्यन्त उपयोगी है।

स्थितिविद्या में यह विद्या बहुत काम आती है। जहां दो अथवा अधिक बल का प्रभाव किसी परमाणु पर होता है, वहां इस विद्या की अत्यंत आवश्यकता होती है और ऋजुभुजक्षेत्रों के गुरुत्वकेन्द्र ढूंढ़ने में भी इस विद्या से बहुत काम निकलता है और बोझ वा डंडी और चर्खी (चरखी) इत्यादि के नियम बिना रेखागणित के हृदयंगम नहीं होते और यह वस्तुयें प्रत्येक छोटे बड़े यंत्र अथवा कल की जड़ हैं और इस सुसभ्य समय में प्रायः पदार्थ कल से सुगमतया निर्मित होते और बनते हैं। जैसा कि पुस्तक मुद्रित करने, कपड़ा बीनने, कपड़ा धोने, तेल निकालने, आटा पीसने इत्यादि में कल से अत्यन्त सुगमता होती है।

खगोलविद्या में जहां पृथ्वी का सूर्य्य के आसपास घूमने का वर्णन है, वहां रेखागणित की आवश्यकता होती है, और यह भी कि किसी स्थान का चौड़ान उस स्थान के क्षितिज की उंचाई उत्तरीय ध्रुव के समान होता है इस को भी रेखागणित से सिद्ध किया है। और खगोलविद्या और भूगोल में रेखागणित का व्यवहार करने से नौका चलाने के नियम ज्ञात होते हैं कि जिनसे व्यवसाय की उच्च श्रेणी की उन्नति, और अतिशय दूर पथ अथवा मार्ग के समाप्त करने में अत्यन्त सुगमता और सुविधा होती है।

जलविद्या में भी रेखागणित काम आता है। जैसा कि जहां एक साधारण समीकरण लिखा है कि जिस से जल के तल के मध्य स्थान की उंचाई कूलों की अपेक्षा समधरातल के विचार से ज्ञात हुई है वहां रेखागणित की सहायता ली गई है।

एंजिनियरी विद्या में यह विद्या बहुत सहायता देती है। जैसा कि पृथ्वी को माप करना और उस पर भवन का आकार (नक़शा) बनाना और उस आकार का बनाना और उस का अटकल करना और आकार के अनुकूल घर की नींव डालना और पक्की सड़क, लोष्ठीयपुलों और नहरों का निर्माण होना, बिना अभिज्ञता रेखागणित के, इन में से कोई भी ठीक ठीक सुसम्पन्न और पूर्ण नहीं हो सकता। वह एंजिन भी रेखागणित द्वारा बना है जिस के सम्बन्ध से हम शतश: क्रोश एक दिवस में जा सकते हैं। और इस आवागच्छ से जो जो लाभ प्राप्त होते हैं उन का अनुमान नहीं हो सकता।

प्रकाश विद्या में रेखागणित का व्यवहार करने से सूक्ष्मदर्शक यंत्र निर्माण हुआ है जिस से जीवधारियों की अत्यन्त पतली शिरायें देखकर रोग के मूल को उन्मूल कर सकते हैं और दूरदर्शक यंत्र द्वारा तारों और ग्रहों को अवलोकन कर के उन की वास्तवता का ज्ञान हो सकता है।

रेखागणित से सदा अनुमान में तर्क वितर्क करने का स्वभाव उत्पन्न होता है और इस विद्या का अध्ययन करनेवाला बुद्धि द्वारा ज्ञातव्य विद्याओं को पसन्द करता है और बिना बुद्धि की परिचालना और प्रगट प्रमाणों के केवल प्रमाणपत्र (सनद) और अलौकिक अथवा कल्पित विषयों पर विश्वास नहीं करता और निज अभिप्राय अथवा अपर कथित विषय के साव्यस्त करने के लिये लौकिक और बुद्धि सम्बन्धी प्रमाणों को समक्ष करता और देता है। निदान परिणाम यह होता है कि स्वच्छन्दता का स्वभाव जो मानुषीय सृष्टि की परा काष्ठा है प्राप्त करता है। इस विद्या का अध्ययन करनेवाला किसी साध्य के सिद्ध करने में प्रथम तो अतीव क्लेशित होता है किन्तु जब उस को साव्यस्त कर

लेता है तो अति आनन्दित होता है। और इस का फल यह होता है कि सदा नवीन बातों के प्रचार करने में दत्त चित्त रहता है। अभिप्राय यह कि रेखागणित और गणित के निमित्त अतीव उद्योग करने से विद्यार्थी में अथवा मनुष्य में सन्तोष, गम्भीरता, स्थिरता, परिश्रम, स्वच्छता, सत्यता, वास्तवता, विवेचकता, सत्यनिर्धारणता, इत्यादि जो कि पुरुष के अतीवोत्तम स्वभाव हैं और जिन का परिणाम सांसारिक और पारलौकिक विषयों में सफल मनोर्थ होना है उत्पादन होते हैं।

आत्म प्रशंसा।

सदा अपनी प्रशंसा करने से घृणा करो, कतिपय मनुष्य असभ्य रीति से बिना किसी बहाने और छेड़ के अपनी प्रशंसा करने लगते हैं। यह सर्वथा अज्ञता और अल्पज्ञता है और जो तनिक उन से अधिक चतुर होते हैं वह पहले बहुत कुछ अपने को बुरा भला कहते और अपनी बहुत सी झूठी निन्दा करते हैं। इस हेतु कि लोगों को इन के कथन का विश्वास हो और फिर अपनी प्रशंसा की पुस्तक खोलते हैं। कतिपय व्यक्ति इस प्रकार से बातें बनाते हैं कि "वास्तव में निज जिह्वा से अपनी प्रशंसा करनी बहुत छोटी बात है मैं आप इसे उत्तम नहीं समझता मुझे स्वयं ऐसी बातों से घृणा है, किन्तु क्या करूं अवश हूं यह अवसर ही ऐसा है कि मुझे स्वयं अपनी प्रशंसा करनी पड़ी यदि अमुक अमुक मनुष्यों ने मेरी बुराई और परोक्ष में निदान की होती तो मैं कथमपि स्वप्रशंसा को जिह्वाग्र न करता"। जो लोग मतिमान हैं और तनिक भी सुबुद्धि रखते हैं वह ऐसे कपटी और चतुर मनुष्यों की बनावटी और गूढ़ अथच कठिन प्रलाप के अभिप्राय की वास्तवता को समझ जाते हैं और उन की दृष्टि ऐसे कृत्रिम विषय के विरल अन्तर पट के पार निकल जाती है। अथच कश्चित जो उन से भी अधिक प्रवीण और बनावट वाले हैं वह प्रथम अपने अवगुण को वर्णन करते और बहुत कुछ अपनी बुराइयों का बखान करते हैं, उपरान्त इस के कहते हैं कि "महोदय! भांति भांति की आपदाओं

को सहन करते करते अब मेरी यह व्यवस्था हो गई है कि जहां मैं किसी मनुष्य को क्लेशित देखता हूं तो मेरी आंखों से तात्काल अश्रु-बिन्दु टपक पड़ते हैं और उस को सहायता करने की ओर अत्यन्त मन की प्रवृत्ति होती है। मुझ से अपने समवयस्क को आपदाग्रस्त नहीं देखा जाता परन्तु क्या करूं अशंक्य हूं कि मुझ को इतनी शक्ति नहीं कि ऐसे मनुष्य को सहायता करूं और उस को आपत्ति का निवारण करूं। मैं विशेष सत्य बात के छिपाने की चेष्टा करता हूं क्योंकि लोग कहेंगे कि देखो यह मनुष्य अपने मुख से अपनी प्रशंसा करता है पर क्या निवेदन करूं दुष्ट सत्य बात छिप नहीं सकती मुख से निकलही आती हैं। वास्तविक यह है कि मैं विश्व में निकृष्टतर और परम अनोदार हूं। जिस समय मैं अपने अल्प शक्तित्व के कारण किसी की सहायता नहीं कर सकता उस समय मुझे अपनी अशक्यतावस्था पर और अपने इस निरर्थ जीवन पर शोक और पश्चाताप होता है" जिन बातों की चर्चा ऊपर हुई है वह प्रगट में हंसी और परिहास ज्ञात होती हैं परंतु यदि विचार और सूक्ष्म दृष्टि से देखो तो ऐसे विषय संसार में प्रतिदिन सन्मुख होते हैं। इस प्रकार की ममता अथवा अभिमान मनुष्य की दृष्टि में इतना अधिक होता है कि वह उन के कारण से इन से अधिक अयोग्य आप अपनी प्रशंसा करता है। मैं ने देखा है कि कोई कोई निज प्रशंसा कराने के अभिप्राय से ऐसी बातों की चर्चा करते हैं कि कल्पना किया कि यदि वह सत्य भी हों तौभी प्रशंसापात्र नहीं। कतिपय मनुष्य निजोपमा के लिये मदान्वित हो कर कथन करते हैं कि "आज मैं छः घंटे में पचास कोस चला" यह उन का कथन सर्वथा असत्य है और कल्पना किया जाय कि वह सत्य भी है तो फिर क्या। इस से केवल यह प्रतिपन्न हुआ कि वह मनुष्य एक अच्छा डांकिया है। कश्चित व्यक्ति शपथ कर करके कहते हैं और अभिमान करते हैं कि "एक बार मैं छः अथवा आठ बोतल मद पान कर गया" पहले तो यह बात अनुमान विरुद्ध है, यदि हम किसी प्रकार इस को सत्य भी समझें तो इस से यह प्रगट हुआ कि वह मनुष्य नहीं वरन पशु है

क्योंकि मनुष्य का यह काम नहीं कि वह छः अथवा आठ बोतल सुरा पी जाय। ऐसा ममत्त्व करने और अयोग्य बातें मुख से निकालने का परिणाम यह होता है कि वह अपना मुख्य अभिप्राय सम्पादन करने में भग्न मनोर्थ रहते और व्यर्थ मिथ्याभाषी विख्यात होते हैं। केवल एक युक्ति ऐसी नष्ट बातों से बचने का है वह यह कि कभी आत्मप्रशंसा की ओर प्रवृत्त न हो। यदि परिभाषण करते समय कहीं ऐसा अवसर उपस्थित हो कि तुम अपने विषय में कुछ कहने के लिये अशक्य हो तो इस का पूर्ण ध्यान रखो कि जिह्वाग्र भाग में इस प्रकार का एक शब्द भी न आने पावे जिस से यह सिद्ध हो कि तुम संकेतत: अथवा कटाक्ष द्वारा अपनी प्रशंसा कराना चाहते हो। जो कुछ तुमारे में बुराई अथवा भलाई है वह स्वत: लोगों को ज्ञात हो जायगी तुम्हारे कहने की कोई आवश्यकता नहीं। सहस्र बार हम अपने मुख से अपनी प्रशंसा करें परन्तु लोग कदापि हमारे कथन का विश्वास न करेंगे जब तक कि स्वयमेव परीक्षा न करलेंगे। और यदि हम सहस्र बार अपनी रसना से अपनी स्तुति करें परन्तु जो बुराई हम में उपस्थित है वह इस से निवारित न होगी और जितनी भलाई कि हमारे में प्रस्तुत है वह असत्य और निर्मूल प्रशंसा करने से अधिक न होगी, बरन इस से लाभ के स्थान पर हानि अथवा क्षति होती है अर्थात् बुराई प्रति दिन अधिक और भलाई नित्यश: कम होती जाती है। यदि हम चुप रहें और अपनी योग्यता का प्रागल्भ्य बलात न करें तो चारो ओर हमारी प्रशंसा होगी। बरन यहां तक कि शत्रु और ईर्षावान पुरुषों से भी न रहा जायगा और वह भी हमारी प्रशंसा करेंगे। इस के विरुद्ध यदि हम स्वयं सब ठौर अपने भाट बन जावें और प्रगटन या अपनी प्रशंसा अथवा गुप्त रीति से चातुर्य्य लिये आत्मस्तुति करें, तथापि लोग समझ जावेंगे और हम को अप्रतिष्ठित और लज्जित करने का उद्योग करेंगे। इस के अतिरिक्त हमारा प्रयोजन भी सुसम्पन्न न होगा अर्थात् जो प्रशंसा कि हमारे चुप रहने के कारण होती वह भी स्वत: प्रशंसा करने से नष्ट होजावेगी ।

उत्तम शिक्षा।

उत्तम शिक्षा, अच्छी समझ, और सत्प्रकृति अथच उत्तम स्वभाव का सुफल है। यह अति अल्पावस्था अथवा बहुत अधिक वयः क्रम में उपलब्ध नहीं हो सकती। इस के प्राप्त करने का यथोचित समय युवावस्था है। उपरांत इस वयः क्रम के अथवा प्रथम इस अवस्था के इस का प्राप्त करना अति कठिन वरन यह कहना चाहिये कि असम्भव है। यदि यह बात युवावस्था में प्राप्त हो गयी तो फिर कभी नष्ट नहीं होती जीवन पर्यंत वही स्वभाव पड़ा रहता है।

उत्तम सुशिक्षित मनुष्य के उत्थानोपवेशन की ऐसी सुन्दर रीतियां होती हैं कि पहलेही समागम में हमलोग उस के विषय में उत्तम अनुमान करने लगते हैं देखतेही प्रसन्न हो जाते हैं और हृदय उस से एक प्रकार का स्नेह करने लगता है। उत्तम शिक्षा के यह अर्थ नहीं कि हमलोगों को पृथ्वी तक झुक झुक कर अभिवादन करें अथवा इतनी नम्रता और शिष्टाचार करने के लिये दत्तचित्त हों कि उन के चरणों पर गिर पड़ें वरन यह अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति के साथ सत्स्वभावता, सभ्यता, और नम्रता से बर्ताव करें और शिष्टाचार अथच अभिवादनादि के कर्तव्यों को उचित रीति और योग्यता से सम्पादन करें। सुशिक्षित व्यक्ति के लिये अवसर और समय ज्ञात करने के लिये स्वाभाविक समझ का होना भी अवश्य है क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि यदि हम किसी बात को इस समय करें तो एक समाज उस से प्रसन्न और आनन्दित होता है और उस को उत्तम समझता है और फिर यदि उसी बात को दूसरे समय दूसरे लोगों के सन्मुख करें तो वह उस से अप्रसन्न होते हैं और उस की असभ्यता अथवा अयोग्यता का अनुमान हृदय में करते हैं। उत्तम शिक्षा के कतिपय नियम हैं जिन का काम प्रतिदिन पड़ता है। जैसे उत्तर देते समय "जी महाशय! जी महाराज" अथवा "नहीं महाशय! नहीं महाराज!" के स्थान पर केवल हां अथवा नहीं शब्द का प्रयोजन करना अयोग्यता और अल्पज्ञता में परिगणित है। इसी

प्रकार से जो मनुष्य कि तुम से बात करे उस की ओर प्रवृत्त न होना और उस की बात का उचित उत्तर न देना शिष्टसमाज के विरुद्ध और असभ्यता है। ऐसी चालों से लोग अप्रसन्न होते और समझते हैं कि तुम ने उन को अप्रतिष्ठित किया अथवा इस योग्य न समझा कि उन की बात का उत्तर दो। जो लोग कि सुशिक्षित होते हैं उन को इन सब बातों का बड़ा ध्यान रहता है जब कश्चित व्यक्ति उन से समालाप करता है तो वह बहुत जी लगाकर, सुनते और प्रश्न का उचित उत्तर देते हैं जब किसी समाज अथवा सभा में जाते हैं तो उच्चस्थान अथवा श्रेष्ठ-स्थल से हटकर बैठते हैं, यदि लोग उन को स्वयं उसी स्थान पर बैठने के लिये अवश्य अथवा आग्रह न करें। आहार भी बहुत स्वच्छता और सुप्रणाली के साथ करते हैं। जब तक सब लोग बैठते नहीं वह भी प्रसन्न मन और हृष्ट चित्त खड़े रहत हैं। उन की मुखाकृति और आननावलोकन से यह रंचक साव्यक्त नहीं होता कि खड़ा रहना उन को अनभिष्ट है अथवा अच्छा नहीं लगता है।

पूर्ण रीति से उत्तम शिक्षा से लाभ उठाना जितना कठिन अथच दुस्साध्य है उतनाही वह उपयोगी और आवश्यक है। इस के प्राप्त करने की युक्ति यह है कि पहले मनुष्य अनुचित अथवा अकरणीय लज्या, धृष्ठता, अपमान, और मित से अधिक बनावट को छोड़ दे और अचंचलता, दृढ़ प्रतिज्ञता, और किञ्चित बनावट (तकल्लुफ़) को ग्रहण करे। भलाई और विद्या स्वर्ण के समान बहु मूल्य वस्तु हैं परंतु यदि उन पर उत्तम शिक्षा को (जिला) न दीजाय तो उन की चमक दमक जाती रहती है। देखो जिला ऐसी वस्तु है कि पीतल स्वर्ण के समान चमकने लगता है और लोगों को उस पर सोने का संभ्रम होता है। इसी उत्तमशिक्षा के कारण से फ़रांसीसियों के शतशः अवगुण छिप जाते हैं और लोग उन को जान बूझ कर गुप्त करते और छिपाते हैं। सुशिक्षित मनुष्य के लिये चाटुकार पत्र की कोई आवश्यकता नहीं, उस की सत्सभावता, सभ्यता, व विद्या उस की योग्यता की ध्वजा और बंदीजन हैं। वह आगे आगे उस के लिये

मार्ग परिष्कृत करती जातीं और लोगों को उस की योग्यता की किम्बदन्ती श्रवण कराती जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति को राजसभा अथवा शिष्टसमाज इत्यादि की परिपाटी और नियम से भी अभिज्ञता लाभ करनी अति आवश्यक है।

वियना में लोग महाराजाधिराज के सामने अभिवादन नहीं करते, अभिवादन के स्थान पर प्रतिष्ठा अथवा शिष्टाचार सूचक शब्द जिह्वा पर लाते हैं। फ़रांसीस में कश्चित व्यक्ति वहां के नराधिप को प्रणाम नहीं करता और न कर का चुम्बन करता है, परंतु स्पेन और इंगलिस्तान में लोग महाराज, और महाराज्ञी को प्रणाम भी करते हैं और करों का भी चुम्बन करते हैं। प्रत्येक राज्य के कतिपय नियम और प्रणाली नियत होती हैं। इस लिये उचित है कि राजसभा में जाने से प्रथम वहां के मुख्य नियम रीति और प्रणाली से अभिज्ञता प्राप्त करो इस लिये कि कश्चित त्रुटि अथवा भूल न होने पावे और कोई बात अयोग्य व विरुद्ध न क्रिय माण हो। बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं बरन यह कहना चाहिये कि कोई ऐसा नहीं है जो अपने मान्यों और बड़ों को प्रतिष्ठा और सन्मान करने की रीति से अनभिज्ञ हो अथवा जिस को यह न ज्ञात हो कि अपने बड़ों के साथ क्या बर्ताव करना चाहिये। किन्तु अन्तर इतनाही है कि जो मनुष्य सुशिक्षित है वह प्रतिष्ठा अथवा सन्मान की रीति को भली भांति सम्पादन करता है और जो अयोग्य है वह उन बातों का बर्ताव ऐसी कुरीति के साथ करता है कि जिस के अवलोकन करने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वह अप्रसन्नता के साथ अशक्य हो कर कर रहा है और वह परमपामरों के साथ रहा है। ऐसा अयोग्य मनुष्य जब दैवात ऐसे लोगों के सहवास में जा निकलता है जिन की प्रतिष्ठा करनी उसे समुचित है तो वह वहां सुस्त, मलीन, और मुह लटकाये बैठा रहता है कभी सीटी बजाता है कभी सिर खुजलाता है निदान इसी प्रकार की सैकड़ों अयोग्य चालें उस से अवगत होती हैं। ऐसे समाज में तुम को केवल एक बात का ध्यान रखना चाहिये वह यह कि तुम प्रतिष्ठा और सन्मान की रीति को सभी-

पस्थित महाशयों के चित्त की वृत्ति के अनुसार कार्य में परिणत करो।

जब कश्चित अपरिचित व्यक्ति इस प्रकार की समज्या में जाता है जिस में निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी तक के सब मनुष्य युक्त होते हैं तो पहले पहल उस समज्या के लोग उस के साथ बराबर वालों की भांति बर्ताव करते हैं यही कारण है कि प्रतिष्ठा व सन्मान, आदर सत्कार, निमन्त्रण व आमंत्रण में वह लोग भी उस से अधिकार बराबरी का रखते और यह चाहते हैं कि यह मनुष्य हमारे साथ उसी प्रकार आदर व भाव से बर्ताव करे जिस प्रकार से कि हमलोग बर्ताव करते हैं। इस प्रकार के समाज में जब जाने का संयोग हो तो तुम धैर्य्य और समझ के साथ संपूर्ण आवश्यक कार्यों को सम्पादन करो किन्तु धैर्य्य से यह तात्पर्य्य नहीं है कि सुस्ती, लापरवाही, और त्रुटि को कार्य्य में परिणत करो बरन यह अभिप्राय है कि घबराओ नहीं और व्यग्र अथवा उद्विग्न न हो।

किसी समाज में यदि कोई मनुष्य तुम को अपनी ओर प्रवृत्त करे और तुम से अफीमचियों के समान चबा चबा कर बातें करें अथवा ऐसे उच्च स्वर से समालाप करे कि सुनने वालों को यह जान पड़े कि मानों वह तुम से लड़ रहा है तो यद्यपि कि उस की यह चाल असभ्य और शिष्टसमाज के विरुद्ध है परन्तु तुम्हारी योग्यता को इस विषय का अनुरागी न होना चाहिये कि तुम उस को अयोग्य और मूर्ख जानकर उस की बातों को बुरी समझ कर उस की ओर प्रवृत्त न हो अथवा उस पर इस विषय को प्रगट करो कि तुम को उस की बातें सुनना अभिष्ट नहीं है।

स्त्रियों का परिभाषण प्राय: पुरुषों से भी अधिक अयोग्य और असत होता है, क्योंकि उन की कामनायें छोटी छोटी होती हैं, थोड़ी थोड़ी बातों से वह प्रसन्न हो जाती है और थोड़ी थोड़ी बातों से अप्रसन्न, क्षण में स्नेह करने लगती हैं और क्षण में घृणा, इसी प्रकार उन के विचार और चिन्तायें भी ऐसी होती हैं। उन से समालाप करने की भी वही रीति है जो ऊपर वर्णन की गयी है अर्थात् तुम उन की बातों को मन लगाकर सुनो उन का प्रबोध, समाधान, सत्कार और प्रशंसा करो।

जो मनुष्य सुशिचित हैं वह अटकल से स्त्रियों की बातों का अभिप्राय पहलेही से समझ जाते हैं और उन के साथ वैसाही बर्ताव करते हैं इसलिये कि वह प्रसन्न रहें।

जब किसी स्थल पर स्थान की संकीर्णता हो और उस ठौर के दूसरे लोग भी अधिकारी हों तो वहां पर तुम को उचित नहीं कि तुम बिना किसी की अनुमति लिये केवल अपने लाभ और सुविधा के प्रयोजन से बैठ जावो अथवा उस स्थान को किसी न किसी प्रकार अपने अधिकार में कर लो। अथवा खाने के समय उत्तम उत्तम भोजनों के पात्रों को अपने सम्मुख खींचकर खाने लगो बरन ऐसे स्थान पर समुचित है कि तुम स्वयं उन भोजनों के खाने को अस्वीकार करो और उन पात्रों को दूसरों के सामने खिसका दो वारो वारो से वह लोग उन पत्रों को फिर तुमारे आगे बढ़ा देंगे और तुम को खाने के लिये कहेंगे उस समय उन के खाने में कुछ चिन्ता नहीं है। इस युक्ति से तुम अपना स्वार्थ सिद्धि भी करोगे और लोगों को प्रसन्न भी रखोगे।

प्रत्येक देश के नियम रीति और प्रणाली भिन्न भिन्न होती है, प्रत्येक देश का कौन कहे बरन एकही देश के भिन्न भिन्न नगरों के नियम समान नहीं होते परन्तु सिद्धांत सब का एक है। अन्तर केवल इतनाही है कि रीति और परिपाटी के कारण आकार और प्रभाव रंचक मात्र परिवर्तित हो जाता है। जो मनुष्य उन नियमों से भली भांति अभिज्ञ हैं जिन की चर्चा ऊपर हुई है वह इन रीतियों को भी अति शीघ्र सुगमता के साथ प्राप्त कर सकता है क्योंकि उस में बहुत अधिक बिचार और मनन नहीं करना पड़ता। नवीन रीतियों का लाभ करना और उन में अपने मन से किसी प्रकार का आग्रह न करना उत्तम शिक्षा का अंतिम फल है इस से अधिक उन्नति का होना असम्भव है। मतिमान मनुष्य जहां जाता है वह वहां के नियम और प्रणाली के विषय में मनोनिवेश और बिचार करता है और जो लोग उस स्थान के अग्रगण्य और विख्यात होते हैं उन को वह अपना निदर्शन और मार्ग दर्शक बना लेता है और देखता रहता है कि वह क्यों कर अपने बड़ों,

मान्यों का शिष्टाचार और सन्मान करते अपने समवयस्कों से किस प्रकार समालाप करते अपने से निम्नश्रेणी के मनुष्यों के साथ कैसा बर्ताव करते और क्या क्या उपकार करते हैं। संक्षिप्त यह कि वह उन को तनक तनक सी बात का ध्यान रखता है अतएव सम्भव नहीं कि किसी उत्तम विषय से अभिज्ञता न हो। इस के विरुद्ध मूर्खों और अल्पज्ञों को इन बातों का कुछ भी विचार अथवा ध्यान नहीं रहता। मनीषावान मनुष्य अपने से श्रेष्ठ मान्य और पूज्य लोगों की चालढाल, रीति ढंग, परिच्छद और प्रणाली तथा परिभाषण की रीति बड़े यत्न से संग्रह और स्वीकार करता है किन्तु इस प्रकार से नहीं कि लोगों को यह साव्यस्त हो कि वह उन का अनुकरण (नक़्ल) करता अथवा उन को मुंह चिढ़ाता है। यह सब भलाइयां जिन का ऊपर वर्णन हुआ है प्रत्येक व्यक्ति के लिये अति उपयोगी और परमावश्यक है। क्योंकि यह सुरत्न और सुन्दराभूषण हैं इस के कारण से योग्यता और विद्या का स्वरूप अथवा सुन्दरता अधिक होती है। जो मनुष्य इन भलाइयों का सुप्रगल्भ है वह लोगों के आंतरिक भाव को तत्काल समझ जाता है इस के प्रथम कि वह उस को अपने मुख से बाहर करें। वास्तव में यह सब गुण लोगों को संमोहित और उन के हृदय पर ऐसा प्रभाव उत्पादन करता है कि मानो किसी ने उन पर वाञ्छित ऐन्द्रजालिक कर्तव्य किया है, यही कारण है कि लोग इन को टोना अथवा इन्द्रजाल कहते हैं। फलतः जिस प्रकार से मनुष्य को प्रतिष्ठा और सन्मान लाभ करने के लिये विद्या और भलाई की आवश्यकता है, उसी प्रकार सानन्द जीवन व्यतीत करने के लिये और समालाप इत्यादि को शोभन और हृदय-ग्राहक अथच मनोहर करने के निमित्त सत्स्वभावता और उत्तम शिक्षा की आवश्यकता है।

सच जानो कि बिना उत्तम शिक्षा के विद्या परमनिष्फल है और उत्तम शिक्षा बिना विद्या के सम्पूर्ण व्यर्थ है। जो मनुष्य कि सुशिक्षित नहीं है वह किसी उत्तम समाज अथवा सतसंगति के योग्य नहीं और न लोग उस का आदर सत्कार करते और न उस से प्रसन्न रहते हैं।

तुम को उचित है कि तुम इस उत्तम शिक्षा का प्रत्येक बात और प्रत्येक कार्य में ध्यान रखो और उन लोगों के चालचलन और ढंग प्रणाली पर दृष्टिपात करो जो अपनी उत्तम शिक्षा के कारण प्रख्यात हैं। जहां तक हो सके उन से इस बात में अग्रसर हो जाने का उद्योग करो इसलिये कि अन्त में कम से कम इतना तो हो कि तुम उन के समान हो जाव स्मरण रखो कि संसार में सब वस्तुओं से बढ़कर उत्तम शिक्षा लाभ करना अति आवश्यक है। देखो कैसा यह योग्यता और विद्या की शोभा देती है और कैसा यह किसी समय अल्प योग्यता पर धूर डालती और उस को छिपा देती है।

—:※:—

भलाई।

भलाई एक ऐसी वस्तु है कि जिस का ध्यान प्रत्येक मनुष्यको रखना चाहिये। सत्कार्य करने और सच बोलने का नाम भलाई है। जो कुछ उत्तम सुफल इस से निकलते हैं उन से संपूर्ण मनुष्य लाभ उठाते और उपकृत होते हैं मुख्यत: वह मनुष्य जो इस का आचरण करनेवाला है। भलाई के कारण से हमलोगों के हृदय में दया, लोकहितैषिता, और द्रवणगुण उत्पन्न होता है और न्याय अधिक होता है। फलत: जो बातें उत्तम हैं वह सब इसी के कारण से उपलब्ध होती हैं। इस के अतिरिक्त अपर कथित वस्तु ऐसी नहीं जिस के कारण हमलोगों को आंतरिक संतोष और वास्तविक आनन्द प्राप्त हो। भलाई के अतिरिक्त और सब वस्तुयें नश्वर हैं, जैसे धन, शासन, और बड़ाई को सम्भव है कि काश्चित व्यक्ति बलात् अथवा अनुचित रीति से हम से अपहरण कर ले अथवा किसी दैवी दुर्घटना से वह स्वयमेव नष्ट हो जाय। देखो मांदगी के कारण से शरीर निर्बल हो जाता और शक्ति नष्ट हो जाती है किन्तु चाहे कि भलाई का बिनाश हो अथवा वह आनन्द जो भलाई के कारण हम-लोगों के चित्तों में होता है दूर हो सम्भव नहीं। भला मनुष्य चाहे कैसोही आपत्ति में और अकिञ्चनतावस्था में क्यों न हो किन्तु तथापि

उस का हृदय संतुष्ट और बे परवाह रहता है। यही कारण है कि वह आपदा में भी अधिक हृष्ट चित्त और प्रसन्न रहता है उन लोगों की अपेक्षा जो वैभववान और धनाढ्य हैं किन्तु बुरे और दुष्ट हृदय अथच असत्प्रकृति हैं।

जो मनुष्य झूठ बोलकर, छल और अत्याचार कर के वैभव अथवा शासनाधिकार प्राप्त करता है वह कभी उस धन अथवा शासनाधिकार का आनन्द नहीं उठा सकता। क्योंकि उस का हृदय उसे प्रत्येक समय क्लेश देता है और ऐसी बुरी रीति से धन अथवा शासन हस्तगत करने पर उस को धिक्कारित और अपमानित करता रहता है। कभी वह चैन से सोने नहीं पाता और यदि किसी समय आंख लग भी गयी तो उद्विग्न कर स्वप्न दिखलाई देते हैं और वह बुराइयां जो उस ने की हैं उसे सोते में व्यग्र और क्लेशित करती हैं। दिन के समय जब अयुग्म होता है और बुराइयों का हृदय में संचार होता है तो कठिन क्लेश होता और वह बहुत उद्विग्न और शोकित अथच खेदित होता है। उस को प्रत्येक बात से भय जान पड़ता है क्योंकि वह जानता है कि लोग मुझ से घृणा करते हैं और यदि अवसर उपलब्ध होगा तो अवश्य मुझ को हानि पहुंचावेंगे। इस के विरुद्ध भला मनुष्य चाहे कैसाही दरिद्र और अकिंचन क्यों न हो परन्तु उस को भरोसा और सावधानी रहती है। आंतरिक सावधानी और आश्वासन के कारण वह दिन भर प्रसन्न और हृष्ट रहता है। किसी प्रकार की बेचैनी उस को नहीं होने पाती। न बुरे विचार उस को संतापित और क्लेशित करते हैं। और न उसे किसी का भय रहता है क्योंकि वह समझता है कि मैं ने किसी के साथ बुराई नहीं की है जो वह मेरे साथ उस का प्रतिकार करेगा।

भलाई कभी प्रच्छन्न नहीं रह सकती, अन्धकार निबिड़ में भी वह चमकती रहती है, चाहे शीघ्र हो अथवा सविलंब किन्तु उस का फल अवश्य मिलता है।

लार्ड श्याफ्टू जबरी महाशय कथन करते हैं कि "कल्पना किया जाय कि कथित व्यक्ति को हमारी भलाई का ज्ञान हो अथवा न हो" और चाहे

किसी को उस से लाभ पहुंचे वा न पहुंचे, किन्तु भलाई के ग्रहण करने में हमारे निज के लाभ क्या कम हैं। जिस प्रकार शरीर और वस्त्रों के स्वच्छ और सुथरा रखने के कारण हम को स्वयं लाभ होता है चाहे दूसरों को हो अथवा न हो वा दूसरों को भला लगे या न लगे।

—:*:—

कतिपय उत्तम सिद्धान्त।

मनुष्य अद्भुत प्रकार का मिश्र है, कुछ तो उस में देवतों की प्रकृति है और कुछ पशु की, और विचित्रता यह कि यदि पहली प्रकृति अर्थात देवतेवाली को बढ़ाना चाहे, तो उस को पदवी देवतों से भी बढ़ जावे, और यदि दूसरी प्रकृति अर्थात् पशुवाली की उन्नति करना चाहे तो पशु से भी निकृष्टतर हो जावे।

कम खाना चाहिये इस हेतु कि अपने को क्लेश न हो कम बोलना चाहिये इस लिये कि दूसरे को दुख न हो, कम सोना चाहिये इस कारण कि बुद्धि तीव्र हो, और सम्भव है कि केवल कम खाने से शेष दोनों बातें भी हस्तगत हों।

प्रत्येक मनुष्य को जीवन में अनुक्षण यह तीन बातें आवश्यक हैं १ कल्पित कार्य २ किसी वस्तु से प्यार ३ किसी वस्तु की आशा।

जिस का बाप नहीं उस के सिर की छाया नहीं, जिस का भाई नहीं उस के भुजा का बल नहीं, जिस को लड़का नहीं उस के हाथ में वृद्धावस्था की टेकनी नहीं, जिस को स्त्री नहीं उस को शरीर का सुख नहीं, किन्तु जिस के पास कुछ नहीं उस को किसी बात की चिन्ता नहीं।

हृदय को निश्चिन्त रखना, खाने, सोने, और व्यायाम करने के समय चित्त को स्थिर और प्रसन्न रखना, बहुत दिनों तक जीवित रहने को युक्ति है। ईर्षा, चिन्तोत्पादक अनुमान, हृदयदाहक क्रोध, सूक्ष्म अथच कठिन बातों की विशेष चिन्ता, अपरमित हर्ष के उत्कर्ष, और मन ही मन घावकारक शोक, से बचना चाहिये।

जिस ईश्वर की दया से हम को भांति भांति के उत्तमोत्तम पदार्थ

उपलब्ध होते हैं, उस का धन्यवाद सर्वावस्था में अति उचित है।

ईश्वर के करकमलों से हम को कोटिशः सुख प्राप्त होते हैं, अतएव यदि कश्चित क्लेश ही प्राप्त हों तो हम उस से क्यों भागें।

केवल थोड़ी विद्या मनुष्य को नास्तिक अथवा ईश्वरविमुख करती है, अधिक विद्या उस के धर्म को और अधिक करती है।

ईश्वर का अस्तित्व वही नहीं मानते जो अपनी बुराइयों के कारण ईश्वर के नास्तिकी कामना रखते हैं इस लिये कि परलोक में उन का कश्चित दण्डदाता न रहे।

ईश्वर के अस्तित्व को न मानना, मनुष्य की नैसर्गिक उत्कृष्टता का नाश करना है। मनुष्य शारीरिक विचार से पशुओं से नितान्त सम्बन्ध रखता है। परन्तु आत्मीय विचारों से ईश्वर से जिस के कारण उस को अपर जीवधारियों पर उत्कृष्टता है। अतएव जब यह संबन्ध नष्ट हो गया तो वह उत्कृष्टता भी जाती रही।

बुद्धिमान बुराइयों से भय करता है, किन्तु मूर्ख उन से लड़ता है, मृत्यु का विचार बुरों को संतप्त करता है, किन्तु भलों के हृदय में आशा उत्पन्न करता है।

बुद्धिमान अपने अवगुणों को देख कर लज्जित होता है, परन्तु मूर्ख दूसरों के अवगुण पर हर्षित होता है, बुद्धिमान अहर्निशि इस सोच में रहता है कि मुझ में कौन बात नहीं है, किन्तु मूर्ख यह सोचता रहता है कि मुझ में क्या क्या बातें हैं।

वह लोग जो पहले से प्रतापवान होते हैं, दूसरों की उन्नति पर जलते हैं, यद्यपि इस से उन को स्वतः हानि नहीं है किन्तु यह उन का आंतरिक भ्रम है।

लोग जब उच्च पद पर आरूढ़ होने लगते हैं, तो उन के स्वाभाविक कार्यों में अधिकांश तत्परता और चातुर्य प्रगट होता है। किन्तु जब पद प्राप्त करलेते हैं तो स्थिरता और धीमापन। जैसे नद जब पर्वतों से मैदान में आता है तो बड़े वेग से गिरता है परन्तु अपने मैदान में धीमा बहता है।

उच्चपदस्थ जन त्रिगुण सेवक बन जाते हैं १ समय स्वामी के सेवक २ सुख्याति के सेवक, ३ सम्बन्धित कार्य के सेवक। भाव यह कि स्वतंत्रता उन को कुछ भी नहीं रहजाती, न तो अपने ऊपर, न स्वकार्यों पर, और न निज समय पर। अतएव आश्चर्य है कि लोग स्वाधिकार खोकर दूसरों पर अधिकार लाभ करें, और दुख भोग कर अधिकतर क्लेश अपने ऊपर लें।

मनुष्य की योग्यता उस की पदवी के अनुसार प्रगट होती है।

दूसरे में कल्पित उत्तम गुण अवलोकन करके, अपने में भी उस की चाहना करनी वीर प्रकृति का कार्य है, परन्तु दूसरे में उस के न होने की कामना करनी ईर्षा कहलाती है।

जिस मनुष्य में ईश्वर ने कल्पित शारीरिक अवगुण दिया हो, उस को दूसरों पर ईर्षा दृष्टि न करके प्रसन्न रहना चाहिये, क्योंकि थोड़े सद्गुण में भी उस से संसार में सुख्याति फैलाने का अवसर उपलब्ध होता है।

जो मनुष्य किसी बात पर अनुमति प्रकाश करता है उस को वास्तविक भेद से भली भांति अभिज्ञ होना चाहिये और अनुमति लेने वाले की प्रकृति से जान, क्योंकि इसी रीति से वह उस के कार्य साधन की चिन्ता करेगा उस की प्रकृति की नहीं सर्वोत्तम अनुमतिदाता प्राकाल के मृत महाशय हैं।

एक मनुष्य की त्रुटि दूसरे के भाग्योदय का कारण होती है।

एक सर्प जब द्वितीय सर्प को निगल लेता है तब अजगर कहलाता है, तथैव मनुष्य को नाश करके मनुष्य उन्नति लाभ करता है।

जो बात प्रकृति के प्रतिकूल हो उस का छोड़ देना ही उत्तम है। किन्तु जो बात हानि कर न हो उस को सर्वदैव प्रचलित रखने की सम्मति नहीं दी जा सकती।

रुग्नावस्था में स्वास्थ्य का ध्यान व नैरुज्यावस्था में परिश्रम की चिन्ता उचित है।

पक्षियों में जो पदवी चमगादड़ की है, विचारों में वही उपमा शंका की है। वह सन्ध्या समय अन्धकार में उड़ती है, और इस को भी जब

बुद्धि पर अंधेरी छाती है तभी रोम व पच निकलते हैं। वह शंकायें जो स्वतः उत्पन्न होती रहतीं हैं केवल भनभनाहट का शब्द रखती हैं, पर वह जो लोगों की कानाफूसी से उत्पन्न होती हैं डंक मारती हैं।

मनुष्य लड़के के साथ बाप के सामान बोल सकता है, स्त्री के साथ पति के समान, बड़ों के साथ लड़के समान बर्ताव कर सकता है, परन्तु केवल अपने मित्र के साथ वह आप अपने ऐसा बर्ताव कर सकता है यदि सच्चा मित्र हो।

किसी से जहां तक सम्भव अथवा निर्वाह हो कुछ न मांगे क्योंकि मांगना एक प्रकार के मरण समान है, किन्तु याचक से प्रथम वह मनुष्य मर जाता है जो होते हुये देने से नाहीं करता है।

संसार में मनुष्य की अवस्था थोड़ी है, समय अल्प है, विद्या असंख्य है, परीक्षाओं में धोखा और अशुद्धि का खटका है, और ज्ञान द्वारा चलना अतीवदुस्तर है, मनुष्य कहां तक कर सकता है।

जो मनुष्य विद्यानुशीलन किया चाहता है उसे समझना चाहिये कि हम कभी मरेहींगे नहीं, और जो धर्मार्थ दत्तचित्त है उस को प्रत्येक समय काल को शिरस्थ जानना समुचित है।

उत्तम पुस्तक से बढ़कर दूसरा मित्र नहीं, प्रत्येक दशा में उस से लाभ है। इस धन में अतिउत्तमता यह है कि न आप खेदित होता है और न दूसरे को खेदित करता है।

सब भलाइयों का नियत रखने वाला गुण परोपकार है, जिस में यह गुण नहीं परमेश्वर उस को सम्पूर्ण भलाइयों को नष्ट करता है। उसी झील का जल मिष्ठ होता है जो नदियों का उद्गम है जिस में केवल नदियों का पतन होता है उस का पानी अवश्य खारा होता है।

तुम्हारे द्वारा यदि किसी का उदर पूर्ण हो अथवा कोई आप्यायित हो तो तुम ईश्वर को धन्यवाद करो, क्योंकि उस ने अपना ही भाग तुम्हारे पाकालय में खाया है।

यदि तुम किसी से कुछ बात करना चाहते हो तो तुम को उचित नहीं कि अपनी बात सुनाने के लिये बलात् उस का हाथ अथवा वस्त्र पकड़ कर खींचो अथवा उस को उकसाओ, क्योंकि शिष्ट और सभ्यलोग

इस वचन को अपनी अप्रतिष्ठा का कारण समझते हैं यदि वह आनन्द पूर्वक तुमारी बात को सुनना अच्छा नहीं जानते तो तुम चुप हो रहो और कदापि उन को तंग न करो।

जब कोई मनुष्य सभा में संभाषण कर रहा हो तो तुम को उचित है कि तुम उस की बात को मत काटो, और लोगों को उस ओर से दूसरी ओर न लगाओ, क्योंकि लोग ऐसे मनुष्य से अप्रसन्न होते हैं, और यह समझते हैं कि इस को कभी सत्पुरुषों के संसर्ग का संयोग नहीं हुआ है।

जब तुम दूसरों से अति तुच्छ और छोटी छोटी बातें छिपाओगे तो वह भी तुमारे साथ ऐसा ही करेंगे। और इस रीति से तुम भी सब भेदों से अनभिज्ञ रहोगे, और कोई बात, कोई समाचार, और कोई भेद, तुम को थोड़ा भी न ज्ञात होगा।

जिस दिन तुम पर कथित आपदा बीत जाय, परमेश्वर का धन्यवाद करो, क्योंकि तुम उस से बच गये।

सत्पुरुष की भलाइयां आपदा ही में प्रगट होती हैं, जिस प्रकार अगर जलनेही पर सुगंध देता है।

आपदा में मनुष्य को अपनी भलाइयों के प्रगट करने का अवसर प्राप्त होता है, और सुख में प्राय: उस की बुराइयां दृष्टिगत होती हैं।

आपदा में कोई किसी का साथ नहीं देता, अन्धकार में परछांही भी मनुष्य का साथ छोड़ देती है।

आपदा वह अन्धकार है जिस में मनुष्य को कोई नहीं देखता, किन्तु वह सब को पहचान जाता है।

सत्पुरुषों की आपदा में सत्पुरुषही काम आ सकते हैं जो हाथी कीचड़ में फंसा है वह हाथियों ही की सहायता से निकलता है।

दुख भोगकर आनन्द लाभ करने में दो भलाइयां हैं प्रथम तो मनुष्य की दृष्टि में इस आनन्द का आदर विशेष होता है क्योंकि जिस वस्तु के लाभ करने में जितनाही श्रम होता है उतनाही उस का सम्मान है, दूसरे लोगों की डाह की दृष्टि उस पर नहीं पड़ती।

यूनान के मतिमानों में से कोई कोई को इस बात पर सदा विचार रहा कि क्या कारण है कि लोगों को झूठ से इतनी प्रीत है, और झूठ भी कैसा जो न तो कवियों के झूठ की भांति कुछ हर्ष उत्पादक हो और न तो व्यापारियों के झूठ के समान कथित लाभकारक हो, और मेरी जिह्वा भी यहां कुंठित है। सत्यता निर्मल दिवानाथ के प्रकाश समान है जिस में सांसारिक कार्यों के नाट्यशाला, लोगों की भीड़ भाड़ की बरात सर्व की दृष्टि को वह छटा नहीं दिखाती, जो रात की चांदनी और दीपक का प्रकाश। सर्व की दृष्टि में यदि सचाई की पदवी मोती समान है जिस का ओप और चमक आंतरिक प्रकाश में प्रगट होती है तो झूठ का समादर हीरे ऐसा जिस की चमक निशा में ही निजोत्तमता प्रगट करती है। तात्पर्य्य यह कि सब दशाओं में लोगों को झूठ अधिक प्रिय होता और उन के हृदयों को लोभाता अथच मोहता है।

असत्यभाषी मनुष्यों से डरता है, किन्तु ईश्वरसन्मुख धृष्टता करता है।

सांसारिक कार्यों में जहां देखो झूठ को कुछ न कुछ प्रवेश रहता है, बरन बहुधा देखा जाता है कि बिना कुछ झूठ मिलाये सांसारिक कार्य नहीं चलता। यह झूठ उस खोट समान है जिस को लोग जान बूझ कर मुद्राओं में मिलाते हैं इसी लिये कि वह शीघ्र घिस न जाय और बहुत दिन तक हाट में चले, परन्तु सब जानते हैं कि ऐसा करने से चांदनी निकम्मी हो जाती है।

संसार में धन पांच प्रकार का होता है १ सुन्दरता २ शारीरिक बल ३ विद्या ४ स्वर्णरौप्यादि ५ सन्तान। और वह समय जब तक मनुष्य को इन की कामना होनी चाहिये दश दश वर्ष उत्तरोत्तर बढ़ा कर मतिमानों ने नियत किया है। अर्थात् जो २० वर्ष की अवस्था तक सुन्दर न निकला फिर आशा न रखे। जो तीस वर्ष की अवस्था तक बलवान न हुआ फिर क्या होगा। ऐसे ही चालीस वर्ष की अवस्था तक विद्या की चाह, पचास वर्ष की अवस्था तक धन की कामना, और साठ वर्ष की अवस्था तक सन्तान की कामना उचित समझी गई है।

धन की अधिकता स्वभाव के लिये बहुधा यात्रा की गठरी होती

है अर्थात् सभाव को धन का बोझा उठाने में वही बात सम्मुख होती है जो सेना के पदचरों को गठरी ढोने में, कि न उसे छोड़ही सकते हैं न थोड़ा ही कर सकते हैं परन्तु चलने में आपत्ति है।

ऐसे धन की कामना व्यर्थ है जिस से केवल शोभा, प्रताप, और दिखलावा तात्पर्य्य हो, पर हां ईश्वर ऐसा धन दे जिस को हम धर्म द्वारा एकत्र करें, ढंग से काम में लावें, प्रसन्नता पूर्वक वितरण करें अर्थात् दान दें, और सन्तोष के साथ छोड़जावें।

प्रथम तो धन का प्राप्त होना सुगम नहीं, यदि मिला भी तो उस की रक्षा दुख देती है, और यदि जाता रहा तो उस का शोक मरण समान होता है, इसी कारण धन की चिन्ता निर्मूल है।

जितनी ही इच्छा करो इच्छा बढ़ती ही जाती है वह धन ऐसे ही किसी को प्राप्त होता है जिस से आगामि की इच्छा कुंठित हो जावे अथवा न हो।

कथन है कि भिषकराजलुक़मान के समीप प्रथम लज्या आई, आप ने पूछा तेरा क्या नाम है, और कहां स्थान है, उस ने उत्तर दिया कि मुझे लज्या कहते हैं और मैं आंखों में रहती हूं, फिर प्रीति आई आप ने उस से भी वही प्रश्न किया, उस ने उत्तर दिया कि हृदय मेरा निवासस्थान है और मुझ को लोग प्रीति कहते हैं, इस के उपरान्त बुद्धि आई और सिर को अपना वासस्थान बतलाया, फिर प्रेम आया आप ने उस से भी यही प्रश्न किया, उस ने कहा मैं आंखों में रहता हूं--लुक़मान ने कहा वह तो लज्या का स्थान है, लज्याने कहा निस्सन्देह परन्तु जब आप आते हैं तब मैं चली जाती हूं, फिर लालच आई और हृदय को अपना वासस्थान बतलाया, लुक़मान ने कहा वह स्थान प्रीति का है, उस ने कहा ठीक है परन्तु जब मैं आती हूं प्रीति नाश हो जाती है। फिर भाग्य आया और सिर को अपना वासस्थान बतलाया। लुक़मान ने कहा वह बुद्धि का स्थान है, बुद्धि बोली सत्य है, परन्तु भाग्य के सनमुख मेरी कुछ नहीं चलती।

बाप वह नहीं जिस से तू उत्पन्न हुआ हो किन्तु वह जिस ने अपनी पदवी से तेरी पदवी को अधिक होना चाहा।

माता वह नहीं जिस के पेट से तू जना हो किन्तु वह जिस ने आप दुख उठाकर तुझे सुख दिया हो।

भाई वह नहीं जो एक पेट से जनमा हो किन्तु वह जिस ने अपने प्राण और शरीर के समान तेरा प्राण और शरीर समझा हो।

पुत्र वह नहीं जो तेरे विभव का स्वामी हो पर वह जो तेरे नाम को अपने सत्कर्मों से प्रकाशित करे।

मित्र वह नहीं जो तेरी प्रशंसा करे पर वह जो तुझे तेरे अवगुण से अभिज्ञ करे।

स्त्री वह नहीं जो देश की रीति के अनुसार ब्याही गई हो पर वह जो क्लेश और सुख में साथ दे।

सेवक वह नहीं जो कहने से सेवा करे पर वह जो प्यार से सर्व दैव हितकारी हो।

गुरु वह नहीं जो वैकुण्ठ के सुख का धोखा देकर सांसारिक सुख से खो दे, पर वह जो त्रिलोक के बंधन से छुड़ा दे।

शिक्षक वह नहीं जो वस्त्र सीने अथवा रोटी बनाने सिखावे, पर वह जो अज्ञानता काम क्रोध और सांसारिक अन्धकार हटा दे।

वैरी वह नहीं जो जीव का नाश अथवा धन की हानि चाहे पर वह जो ईश्वर विमुख करे।

राजा वह नहीं जो प्रजा से सेवा करावे पर वह जो प्रजा की सेवा करे।

मूर्ख वह नहीं जो अपनी मूर्खता को स्वीकार करे, पर वह जो इस के विरुद्ध दावा करे।

नास्तिक वह नहीं जो किसी मत के विरुद्ध हो पर वह जो भगवान को एक का मित्र और दूसरे का शत्रु बतावे।

तपस्वी वह नहीं जो भय और आशा से तप करे, पर वह जो भय और आशा को छोड़ दे।

आयु बढ़ाना चाहे तो भोग कम करे, बीमार न पड़ना चाहे तो पेट भर न खाय और छाती को सदा रचा करें, प्रतिष्ठा के साथ रहना चाहे तो ऋण न ले और किसी से यांचना न करे, जो मुख से कहें वही हो ऐसा चाहे तो झूठ न बोले, दुनिया का सुख चाहे तो परिश्रम कर के विद्या पढ़े, चाहे कि हमारा कोई शत्रु न हो तो क्रोध न करे, संसार में सब का मित्र बनना चाहे तो सत्य किन्तु मीठी बचन बोले, सदा आरोग्य रहना और कभी किसी रोग में ग्रस्त न होना चाहे तो आरोग्यता के नियमों का पालन करे, अपनी आंख और जिह्वा को निरन्तर अपने वश में रखे, और अपना कपड़ा अपना शरीर पवित्र रखे।

प्रतिदिन रात्रि को जब सोने के लिये पर्यंक पर जाओ तो जो कुछ तुम से दिन में किसी प्रकार का असत् कर्म हुआ हो तो ईश्वर से क्षमा प्रार्थना करो और शपथ करो कि पुन: ऐसा न करेंगे, और यदि कथित सत्कर्म तुम से हुआ हो तो भूल जाओ क्योंकि उस का स्मरण रखना अभिमान उत्पन्न करता है।

किसी की भड़ी में आकर अपने वित्त से बढ़कर कर्म कदापि मत करो नहीं तो पीछे पश्चाताप होगा, जो भेद कहने के योग्य न हो उस को कभी अपने मित्र से भी न कहो, यदि किसी के द्वारा किसी का भला होता हो तो भांजी मत मारो और पंच बन के किसी से मत मिलो क्योंकि इस से बढ़कर दूसरा पाप नहीं।

जब किसी पुरुष से और कोई पुरुष बात करता हो तो तुम कभी उन के बीच में मत बोलो क्योंकि ऐसा करने से लोग तुम को मूर्ख समझेंगे, मूर्ख की यह बड़ी पहचान है कि बिना बुलाये अथवा कुछ पूछे बोल उठता है। जिस समय कथित व्यक्ति कुछ खा रहा हो तुम कभी उस की ओर न देखो।

जिस मार्ग में तुम्हारे पिता पितामह चले हों उसी मार्ग में तुम भी चलो, परन्तु जो तुमारे पिता पितामह सत्पुरुष रहे हों, यदि दुष्ट रहे हों तो कभी उन के मार्ग पर मत चलो।

सर्वदेव भूत पूर्व आर्य्यों के मार्ग पर चलने का उद्योग करो क्यों धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग पर चलने से क्लेश कभी नहीं होता।"

यदि विद्याभ्यास का अनुराग रखते हो तो दुष्ट विषयी जनों : संसर्ग, मद्यादि मादक वस्तुओं का सेवन, और वेश्यागमनादि अस व्यसन का परित्याग करो।

यदि हो सके तो यथा शक्ति अन्न वस्त्र पुस्तक आदि से विद्यार्थिय का सत्कार करो, और जहां तक संभव हो विद्यादान में त्रुटि न करो जल, अन्न, गौ, पृथ्वी और सुवर्ण आदि मर्त्य लोक में जितने दान हैं इ सब दानों में विद्या का दान अति श्रेष्ठ है "विद्यादानात् परं दानं भूतो न भविष्यति"।

किसी मित्र से जो वस्तु उस को आवश्यक की हो जहां तक बने मांगो। वीर पुरुष वही कहा जा सकता है जो विपत्ति के समय सन्त करे और हाय हाय न करता फिरे।

"अहिंसा परमोधर्म्मः" इसे ऐसा मत मानो कि गृह सर्प, वृश्चिक, और गोजरों से भर जाय, व्याघ्रादि दुष्ट जन्तुओं के मारने को हिंसा नहीं कहते, इन का वध करनाही धर्म्म है, उपकारी जीवों की रक्षा करने में अपने प्राण तक लगा दो तो कुछ चिन्ता नहीं।

जिस समय लड़का उत्पन्न हुआ सब तो आनन्द की अधिकता से हंसते थे पर वह रुदन कर रहा था, अतएव उचित है कि इस प्रकार जीवन व्यतीत करे कि मरते समय सब लोग रोते रहें और मनुष्य संसार से हंसता हुआ जाय।

दोहा—अधिक चैत मंगल दिवस, असित सत्तमी पाय।
ग्रन्थ बन्यो सर बेद निधि, ससि सम्वत में आय॥

—:०:—